डा० लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों
का
समाजशास्त्रीय अध्ययन

(डी० फिल् की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

●

निर्देशिका :
डा० मीरा श्रीवास्तव
एम० ए०, डी० फिल्, डी० लिट्, भू० पू० नैशनल फेलो
रीडर, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

●

प्रस्तुतकर्ता :
राम प्रीत सिंह

*
**
*

हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
२४ अप्रैल, सन् १९८९ ई०

भूमिका

साहित्य का उदय समाज में होता है, वह समाज में पैदा होकर अनवरत समाज को शक्तिशाली बनाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। इसका उदय समाज के रक्षार्थ ही हुआ था जब आदि कवि वाल्मीकि का कोमल हृदय क्रौंच पक्षी के दुःख से दुखी हुआ तो वह स्वतः ही फूट पड़ा— मां निषादप्रतिष्ठाम्------। समाज भी साहित्य के निर्माण के प्रति कम उत्तरदायी नहीं है। जिस प्रकार समाज की अन्य संस्थाओं का निर्माण समाज करता है और समाज का निर्माण ये संस्थाएं करती हैं उसी प्रकार साहित्य का निर्माण समाज करता है। साहित्य के बारे में यह तथ्य ढूंढना कि वह साहित्यिक नियमों के आधार पर कितना रचा गया है, या उसके अन्दर सौन्दर्य पक्ष कितना शक्तिशाली है, बकवास ही लगता है। सच्चा साहित्य तो वही है जो किसी न किसी रूप में समाज के निर्माण में योगदान करता है।

साहित्य के समाजशास्त्र का अर्थ है- साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन। इसका मुख्य सम्बन्ध साहित्य के उत्पादन में सहायक साधन, वितरण और एक विशिष्ट समाज में क्रय- विक्रय से है। किस तरह किताबें प्रकाशित होती हैं, किस समाज में [illegible] है, साहित्य से

प्रेम करने वाले पाठकों की संख्या, शिक्षा का स्तर आदि बातों का लेखा-जोखा तक ही यह सीमित है। इससे यह जाना जाता है कि पाठ कितना अपने समाज से जुड़ा हुआ है। दूसरे शब्दों में, कृति के पाठ से उन समग्र तथ्यों को ग्रहण कर लेना जिसमें सामाजिक इतिहासकारों की आसक्ति है। पर साहित्य के समाजशास्त्र का यह स्वरूप न केवल उसके अल्पता का ही परिचय देता है बल्कि उस षड्यन्त्र का भी पर्दाफाश कर देता है जो इसे आलोचना के मापदण्ड के रूप में स्थापित करना चाहते हैं। इस मापदण्ड को स्वीकार करना साहित्य एवम् साहित्यकार दोनों का अहित करना है।

उपर्युक्त तथ्य को प्रमाणित करने के लिए साहित्य के समाजशास्त्र की वास्तविकता देखना अत्यन्त आवश्यक है। इसके विश्लेषणार्थ प्राय: तीन विधियां काम में लायी जाती हैं।

(१) कुछ घटकों की परिकल्पना

(२) साहित्य और समाज की बनावट में समानान्तरता

(३) संस्था के रूप में साहित्य का अध्ययन

समाज के निर्माण में छोटी से बड़ी अनेक संस्थाओं की महत्वपूर्ण

भूमिका होती है। यथा- धर्म, दर्शन, राजनीति आदि। साहित्य भी संस्था के रूप में समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। साहित्य का भी अपना समाज होता है, उसे लेखक, आलोचक और पाठक के अन्तःक्रियात्मक सम्बन्धों के रूप में समझा जा सकता है।

साहित्य का सृजन किसी लेखक के द्वारा होता है। लेखक साहित्य में स्वयं को भी स्थापित करना चाहता है। उसका साहित्य उसके व्यक्तित्व से अवश्य ही जुड़ जाता है। अतः किसी साहित्य को समझने के लिए लेखक के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने वाले तथ्यों को समझना अनिवार्य है। कुछ आलोचक लेखक की वर्गीय स्थिति, वित्तीय समस्याओं, संरक्षण, समकालीन स्थितियों पर विशेष जोर देते हैं। पर देखा जाय तो यह मापदण्ड सभी लेखकों पर सही नहीं लागू होता। रीतिकाल के लेखक ने निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखता हुआ (उच्च वर्ग) अपने आश्रयदाताओं की विचारधारा को अपना लिया था।

लेखक एक विशेष पाठक वर्ग को सम्बोधित करता है। उसकी रचना की सफलता पाठक की स्वीकृति या अस्वीकृति पर निर्भर करती है। उदाहरणस्वरूप बाबू देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास को उस समय बहुत ही पाठकों की सराहना प्राप्त हुई। पर उनमें राष्ट्रीयता और

सामाजिकता की खोज व्यर्थ है। ये शुद्ध रूप में मनोरंजन की वस्तु थे। अन्य रूप में भवभूति के नाटक तत्कालीन लोगों की व्यर्थ ही लगी पर कालान्तर में वे ही एक श्रेष्ठ नाटककार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि साहित्य के समाजशास्त्र के प्रवक्ताओं ने लेखक और जनता के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों को अनदेखा कर दिया है।

लेखक वर्गीय स्थिति, आर्थिक स्तर, पेशा आदि के कठघरे में बन्द प्राणी नहीं है। लेखक के जिस व्यक्तित्व की परिकल्पना इस प्रणाली के तहत की गयी है उसमें उसकी स्वातन्त्र्य प्रवृत्ति का हनन हुआ है। रचना केवल अपने बाहरी समाज को ही लेकर नहीं चलती है। कला में वास्तविकता के दर्शन प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु समाजशास्त्रीय अध्ययन को इस रूपान्तरण से कुछ लेना देना नहीं है।

अमरीकी समाजशास्त्र की तरह साहित्य का समाजशास्त्र भी मूल्य मुक्त है। यह न तो साहित्य की स्वयं आस्थता की तरफ ध्यान देता है और न ही उसकी उपयोगिता को ही। इस आधार पर साहित्य का अध्ययन बिलकुल ही व्यर्थ है। निष्कर्षतः साहित्य के समाजशास्त्र का मानक स्वरूप ही त्रुटियों से भरा हुआ है।

साहित्य का उपयोग समाज के निर्माणार्थ ही किया जाता है।

इसका उपयोग समाज को अखण्ड बनाये रखने के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह सत्य है कि साहित्य से क्रान्ति नहीं हो सकती है पर आदमी को इन्सान बनाने तथा बेहतर समाज के निर्माण में योग देने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है स्वम् कर रहा है।

साहित्य के समाजशास्त्र का उपयोग घटिया दर्जे की रचनाओं के मूल्यांकन के लिए उपयुक्त है। श्रेष्ठ रचनाओं के लिए यह अनुपयुक्त ही है। क्योंकि श्रेष्ठ रचनाओं में कई स्तर पर " डिस्शन " होता है जो इस प्रकार के समाजशास्त्रीय अध्ययन की पकड़ में नहीं आ सकता है। उच्च साहित्य केवल अपने देश, काल की सीमाओं में ही नहीं बंधा रहता। वह देश, काल की सीमाओं का अतिक्रमण करके एक सुन्दर समाज के लिए रचनात्मक पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

समाजशास्त्र जिन विषयों का अध्ययन करता है उनका मानव समुदाय से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उन्हीं प्रतिमानों को उठाता है। यह आठ अध्यायों में विभाजित है। पहले अध्याय का विषय है : समाजशास्त्र का क्षेत्र तथा विषयवस्तु। समाजशास्त्र का क्षेत्र के विषय में दो सम्प्रदायों का विचार प्रस्तुत किया गया है। साथ ही समाजशास्त्र की विषयवस्तु को भी प्रस्तुत किया गया है।

दूसरा अध्याय : प्राथमिक अवधारणा- समाज, समुदाय, समिति

एवम् संस्था । संस्था के अन्तर्गत आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शिक्षण आदि संस्थाओं का उल्लेख किया गया है। इन संस्थाओं की आधुनिक स्थिति के बारे में डा० लाल के विचारों को विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है। अन्त में डा० लाल के नाटकों का प्राथमिक अवधारणा के विषय में रचनात्मक योगदान का भी मूल्यांकन किया गया है।

तीसरा अध्याय है : सामाजिक संगठन, विघटन, स्त्रीकरण, विवाह, परिवार, पारिवारिक विघटन आदि। इस अध्याय में उन्हीं सम्बन्धों में डा० लाल के विचारों को प्रस्तुत किया गया है। अन्त में डा० लाल ने समाज, विवाह, परिवार के क्षेत्र में जो रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किया है, उसका भी विवेचन किया गया है।

चौथा अध्याय है : सामाजिक प्रतिमान। सामाजिक प्रतिमान के अन्तर्गत रूढ़ियां, प्रथा, परम्परा, नैतिकता तथा धर्म, कानून आदि का वर्णन किया गया है। डा० लाल का इन प्रतिमानों के प्रति क्या विचार है ? इसका सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है। आधुनिक समाज में उभरते हुए नवीन प्रतिमानों का भी उल्लेख किया गया है। आधुनिक काल में कानून एवम् सरकार की स्थिति विशेष उल्लेखनीय है। डा० लाल के नाटकों की समीचीनता एवं आधुनिक सम्पन्नता के कारण ही है।

पांचवा अध्याय है : संस्कृति, समाज, एवम् व्यक्तित्व (समाजीकरण) इसके अन्तर्गत व्यक्तित्व निर्धारण में संस्कृति एवम् समाज की भूमिका का आकलन किया गया है। डा० लाल का इस व्यक्तित्व निर्धारण के प्रति क्या विचार है और उनके नाटकों का इस दिशा में क्या योगदान है- इस अध्याय में आलोचित किया गया है और समाजीकरण की प्रक्रिया का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

छठा अध्याय है : व्यक्ति और समाज। इस अध्याय में व्यक्ति और समाज के बीच व्याप्त सम्बन्धों का अध्ययन किया गया है। यह भी देखने की कोशिश की गई है कि समाज प्रमुख है या व्यक्ति ? इस सन्दर्भ में, व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों पर डा० लाल के विचारों का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

सातवां अध्याय है : सामाजिक नियन्त्रण ई जनमत, नेतृत्व। यहां पर नियन्त्रण के क्षेत्र में आधुनिक समाज की स्थिति का वर्णन किया गया है। आधुनिक समाज पूर्व स्थापित नियन्त्रण के साधनों का कहां तक पालन कर रहा है ? उसके गुण दोष एवम् नवीन जनमत का भी उल्लेख किया गया है। नेतृत्व के अन्तर्गत नेता के गुण दोष के साथ आधुनिक परिवेश में व्याप्त नेतृत्व के गुणों की समीक्षा की गयी है।

आठवां अध्याय है : सामाजिक परिवर्तन । इसके अन्तर्गत बदलते समाज की रूढ़ियां, उनका औचित्य और मूल्यांकन, आधुनिकता की मांग के साथ ही आधुनिक नाटक का समाजशास्त्र क्या है ? आदि विषयों की गहराई से छानबीन की गई है ।

इस प्रकार सम्पूर्ण समाजशास्त्रीय परिवेश में डा० लक्ष्मीनारायण लाल के विशद् और विशाल नाटक संसार को देखा- परखा गया है । समाज-शास्त्रीय दृष्टि को निरन्तर पकड़े रहने के लिए मैं बाध्य था, इसलिए अध्ययन किन्हीं विशिष्ट मुद्दों से (यद्यपि ये मुद्दे बड़े व्यापक और सारगर्भित हैं) बांधकर ही प्रस्तुत करना पड़ा । परन्तु शैली की सीमाओं में भी मैंने पर्याप्त स्वतन्त्रता ली है और विषय के निर्वाह को अधिकाधिक रुचिकर तथा रचनात्मक बनाने का निरन्तर प्रयास किया है । आशा है विद्वज्जन इस शुरुआत को अपना प्रोत्साहन और आशीर्वाद देंगे ।

अन्त में मेरा यह पुनीत कर्तव्य है कि मैं अपनी शोध निर्देशिका आदरणीया डा० मीरा श्रीवास्तव को स्मरण करूं जिनके विद्वतापूर्ण निर्देशन में प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध पूरा हुआ ।

रामप्रीत सिंह

रामप्रीत सिंह

दिनांक : २४ अप्रैल, सन् १९८९ ई०

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

: अनुक्रमणिका :

आधारभूत सामाजिक संस्थायें	(१) परिवार
	(२) आर्थिक संस्थायें
	(३) राजनीतिक एवम् वैधानिक संस्थायें
	(४) धार्मिक संस्थायें
	(५) शैक्षणिक एवम् वैधानिक संस्थायें
मौलिक सामाजिक प्रक्रियायें :	(१) विभेदीकरण एवम् स्तरीकरण
	(२) सहयोग, समायोजन तथा सात्मीकरण
	(३) सामाजिक संघर्ष
	(४) संचार (जनमत निर्माण, अभिव्यक्ति और परिवर्तन)
	(५) समाजीकरण तथा सैद्धान्तीकरण
	(६) सामाजिक मूल्यांकन
	(७) सामाजिक विचलन
	(८) सामाजिक नियन्त्रण
	(९) सामाजिक एकीकरण
	(१०) सामाजिक परिवर्तन

(१) सामाजिक संगठन :

डा० लाल के नाटकों में : सामाजिक संगठन के स्थान पर विघटन

(२) स्तरीकरण : नवीन वर्गों का उदय

(क) धर्म के आधार पर

(ख) राजनीति के आधार पर

(ग) आर्थिक आधार

(घ) शिक्षा के आधार पर

(ङ०) जाति के आधार पर

(३) विवाह मूलभूत परिवर्तन

व्यक्तिवादी आधुनिकता : मुक्त यौन-सम्बन्ध

नारी मानसिकता में विस्फोट

संशिलष्ट विवाह संस्कार अथवा " दोस्ती"

सन्तान : अवैध अनाम प्रेम पूर्ण सम्बन्धों का परिणाम

नवीन विवाह दृष्टि

(४) परिवार नवनिर्माण

पति पत्नी का द्वन्द्व

माता-पिता की भूमिका

नारी प्रताड़ना

डा० लाल के नाटकों का इस दिशा में रचनात्मक योगदान

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय : समाजशास्त्र का क्षेत्र तथा विषयवस्तु

समाजशास्त्र का उद्भव एवम् विकास काफी पुराना नहीं है। जब धीरे - धीरे समाज विकसित होता गया उसी अनुसार उसके क्रियाकलाप जटिल होते गये। "समाजशास्त्र" की आवश्यकता का अनुभव जटिल समाजों और विभिन्न सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए ही किया गया। इस नवीन विज्ञान के जन्मदाता "आगस्त काम्टे" को माना जाता है। आपने ही सन् १८३८ ई० में इस नवीन शास्त्र को "समाजशास्त्र" (Sociology) नाम दिया।

शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि समाजशास्त्र शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है : समाज + शास्त्र। अर्थात समाज का शास्त्र या विज्ञान। जो समाज का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करता है वह है "समाजशास्त्र"।

जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि समाजशास्त्र क्या है ? तो विभिन्न मत मतान्तरों की प्राप्ति होती है। कुछ समाजशास्त्रियों की अवधारणा है कि "समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

"समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है।"
समाजशास्त्र सामाजिक समूहों का अध्ययन करता है।"
समाजशास्त्र सामाजिक अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करता है।"[1]

१- एम० एल० गुप्ता एवं डी० डी० शर्मा, समाजशास्त्र, पृ०- ६- १०

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र समाज का एक समग्र इकाई के रूप में अध्ययन करने वाला विज्ञान है। इसमें सामाजिक सम्बन्धों का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। सामाजिक सम्बन्धों को ठीक से समझने की दृष्टि से सामाजिक क्रिया, सामाजिक अन्त:क्रिया एवम् सामाजिक मूल्यों के अध्ययन पर इस शास्त्र में विशेष जोर दिया गया है।

समाजशास्त्रियों की अवधारणा है कि समाजशास्त्र के क्षेत्र निर्धारण का कार्य अन्य शास्त्र की अपेक्षा कठिन है। " इंकल्स " कहते हैं कि " समाजशास्त्र परिवर्तनशील समाज का अध्ययन करता है, इसलिए समाजशास्त्र के अध्ययन की न तो कोई सीमा निर्धारित की जा सकती है, न ही अध्ययन क्षेत्र को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जा सकता है।"[१]

क्षेत्र का अर्थ है कि वह विज्ञान कहाँ तक फैला है। अन्य शब्दों में क्षेत्र का अर्थ उन सम्भावित सीमाओं से है जिनके अन्तर्गत किसी विज्ञान या विषय का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र के सम्बन्ध में दो विशिष्ट मत अनुयायियों का उल्लेख किया जा सकता है-

(१) स्वरूपात्मक सम्प्रदाय

(२) समन्वयात्मक सम्प्रदाय

१- एलेक्स इंकल्स , समाजशास्त्र क्या है ? पृ०- १

प्रथम सम्प्रदाय के समाजशास्त्रियों का विचार है कि राजनीतिशास्त्र, भूगोल, अर्थशास्त्र के समान समाजशास्त्र भी एक स्वतन्त्र स्वम् विशिष्ट विज्ञान है। समाजशास्त्र को एक विशिष्ट विज्ञान बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन न करके सम्बन्धों के विशिष्ट स्वरूपों का अध्ययन किया जाय, सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपात्मक पक्ष पर जोर देने के कारण ही इस सम्प्रदाय को स्वरूपात्मक सम्प्रदाय कहा जाता है। इस विचारधारा के प्रमुख विद्वान् जार्ज सिमेल, वानविज, मैक्सवेबर आदि हैं।

द्वितीय सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थक सारोकिन, दुर्खीम, ~~हाब हाउस~~ आदि हैं। यह सम्प्रदाय समाजशास्त्र को एक विज्ञान बनाने के बजाय एक सामान्य विज्ञान बनाने के पक्ष में है। इनका तर्क है-

(क) समाज की प्रकृति जीवधारी शरीर के समान है जिसके विभिन्न अंग एक दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है और एक अंग में होने वाला कोई भी परिवर्तन दूसरे अंगों को परिवर्तित किये बिना नहीं रह सकता है। अतः समाज को समझने के लिए उसकी विभिन्न इकाइयों या अंगों के पारस्परिक सम्बन्ध को समझना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य तभी हो सकता है जब समाजशास्त्र को एक सामान्य विज्ञान बनाया जाय। और उसके क्षेत्र को काफी विस्तृत किया गया।

(ख) प्रत्येक सामाजिक विज्ञान के द्वारा किसी एक पक्ष का

ही अध्ययन किया जाता है। यथा राजनीतिशास्त्र द्वारा समाज के एक ही पक्ष राजनीतिक जीवन का ही अध्ययन होता है। अन्य विज्ञान के अभाव में जो सम्पूर्ण समाज का अध्ययन करे, यह कार्य समाजशास्त्र को ही पूरा करना है। इसके प्रमुख समर्थक दुर्खीम, सारोकिन आदि हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र के सम्बन्ध में दोनों ही पक्षों का दृष्टिकोण एकांगी है। समाजशास्त्र न तो पूरी तरह विशिष्ट विज्ञान है, और न ही सामान्य विज्ञान है। वास्तविकता यह है कि समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र के सम्बन्ध में दोनों ही दृष्टिकोण सम्मिलित हैं। जहां समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत एक ओर सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में विशिष्ट दृष्टिकोण पर बल प्रदान किया जाता है वहां दूसरी ओर सामाजिक घटनाओं के सामान्य पक्ष पर भी जोर दिया जाता है। समाजशास्त्र में जहां सामान्य सामाजिक सम्बन्धों का महत्व है वहां साथ ही विशिष्ट प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों का भी। अत: समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत " सामान्यता " और " विशिष्टता " दोनों हैं।

समाजशास्त्र की विषय वस्तु या विषय सामग्री

विषयवस्तु का तात्पर्य उन निश्चित बातों या विषयों से

है जिसका अध्ययन एक शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। समाजशास्त्र की विषयवस्तु के सम्बन्ध में यद्यपि विद्वानों में मतभेद है परन्तु अधिकांश समाजशास्त्री सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक नियंत्रण एवम् सामाजिक परिवर्तन को इसके अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं।

अमरीका में हुई एक सामाजिक गोष्ठी में समाजशास्त्र की विषयवस्तु में सभी प्रमुख विषयों को सम्मिलित करने का प्रयत्न किया गया जो इस प्रकार है-

(१) मानव संस्कृति एवम् समाज

(२) सामाजिक क्रिया एवम् सामाजिक सम्बन्ध

(३) मानव व्यक्तित्व

(४) समूह (प्रजाति एवम् वर्ग भी सम्मिलित है)

(५) समुदाय (ग्रामीण एवम् नगरीय)

(६) समितियाँ एवम् संगठन

(७) समाज

<u>आधारभूत सामाजिक संस्थायें :</u>

(१) परिवार

(२) आर्थिक संस्थायें

(३) राजनीतिक एवम् वैधानिक संस्थायें

(४) धार्मिक संस्थायें

(५) शैक्षणिक एवम् वैज्ञानिक संस्थायें

मौलिक सामाजिक प्रक्रियाएं :

(१) विभेदीकरण एवम् स्तरीकरण

(२) सहयोग, समायोजन, सात्मीकरण

(३) सामाजिक संघर्ष

(४) संचार (जनमत निर्माण, अभिव्यक्ति और परिवर्तन)

(५) समाजीकरण तथा सैद्धान्तीकरण

(६) सामाजिक मूल्यांकन

(७) सामाजिक विचलन

(८) सामाजिक नियन्त्रण

(९) सामाजिक एकीकरण

(१०) सामाजिक परिवर्तन

ऊपर वर्णित सम्पूर्ण विषय- सामग्री पर ध्यानपूर्वक विचार करने पर हम पाते हैं कि समाजशास्त्र की विषय सामग्री में मूल बात सामाजिक सम्बन्ध ही है। इसका कारण यह है कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत अध्ययन किये जाने वाले सभी विषयों का प्रमुख आधार सामाजिक सम्बन्ध ही है। मैकाइवर एवम् पेज ने लिखा है कि " समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्ध के विषय में है।"[१]

१- Maciver And Page, Society · An Introductory Analysis, P.V.

द्वितीय अध्याय

दूसरा अध्याय : प्राथमिक अवधारणा : समाज— समुदाय, समिति एवम् संस्था-
(क)धार्मिक(ख)आर्थिक (ग)राजनीतिक(घ)शिक्षण

समाजशास्त्र में समाज शब्द का अर्थ विशिष्ट अर्थ में किया गया है। यहां पर व्यक्ति - व्यक्ति के बीच पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित व्यवस्था को समाज कहा गया है। कुछ विद्वान् व्यक्तियों के समूह को ही समाज मानते है, परन्तु समाजशास्त्र की दृष्टि से यह परिभाषा अपूर्ण है। मूलत: व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ अन्त:क्रिया करते और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों के आधार पर एक दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं, कुछ क्रियाएं और प्रतिक्रियाएं करते हैं। इनमें कुछ पारस्परिक अपेक्षाएं होती हैं। इन सबसे मिलकर बनने वाली व्यवस्था को ही समाज कहते हैं। " मैकाइवर और पेज " ने समाज को सामाजिक सम्बन्धों के जाल या ताने -बाने के रूप में परिभाषित किया है।[१]

(१) समुदाय (Community)

यदि शाब्दिक दृष्टि से समुदाय के अर्थ पर विचार करें तो हम पाते हैं कि अंग्रेजी का Community शब्द दो लैटिन शब्दों " Com " तथा Munes से बना है। " Com " शब्द का अर्थ Together अर्थात् " एक साथ " से है और " Munes " का अर्थ " Serving " अर्थात् सेवा करने से है। इन शब्दों के आधार पर " समुदाय " का अर्थ है, " व्यक्तियों का ऐसा समूह

१- मैकाइवर तथा पेज, पृ०- १५, 'समाज'

जो निश्चित भू-भाग पर साथ - साथ रहते हैं और वे किसी एक उद्देश्य के लिए नहीं बल्कि सामान्य उद्देश्यों के लिए इकट्ठे रहते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन सामान्यत: यहीं व्यतीत होता है।

" मैकाइवर तथा पेज " के अनुसार-" जब किसी छोटे या बड़े समूह के सदस्य साथ - साथ इस प्रकार रहते हैं कि वे किसी विशेष हित में भागीदार नहीं होकर सामान्य जीवन की मूलभूत दशाओं या स्थितियों में भाग लेते हों तो ऐसे समूह को समुदाय कहते हैं।"[१]

आगबर्न तथा निमकॉफ के अनुसार-" एक सीमित क्षेत्र में सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण संगठन को समुदाय कहा गया है।"[२]

" निष्कर्षत: समुदाय सामान्य सामाजिक जीवन में भागीदार लोगों का ऐसा समूह है जो किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है और जिसमें " हम की भावना " या सामुदायिक भावना पायी जाती है।"

(२) <u>समिति एवं संस्था : आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, शिक्षण</u>

समिति और संस्था दोनों ही एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। दोनों को एक दूसरे के सन्दर्भ में ही ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। समिति व्यक्तियों का एक समूह है जो कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाया जाता है। जबकि संस्था उन्हीं उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नियमों

१- मैकाइवर तथा पेज, पृ०- १२, " समाज "

२- आगबर्न एण्ड निमकाफ, ए हैण्डबुक आफ सोशियोलोजी, पृष्ठ-२८९.

एवम् समाज द्वारा मान्यता प्राप्त एक निश्चित ढंग भी कहा जा सकता है। जिन उद्देश्यों को लेकर समिति का निर्माण होता है उन्हीं की पूर्ति के लिए अपनायी जाने वाली कार्य प्रणाली को संस्था कहते हैं। यथा महाविद्यालय एक समिति एवम् संस्था दोनों है। जब हम महाविद्यालय पर आचार्य विभागाध्यक्षों, प्राध्यापकों, अन्य कर्मचारियों तथा विद्यार्थियों के समूह के रूप में विचार करते हैं तो यह एक समिति है जिसके कुछ लक्ष्य हैं। उन्हीं लक्ष्यों की पूर्ति के लिए महाविद्यालय में शिक्षण की एक पद्धति अपनायी होती है, एक टाइमटेबुल बनाना होता है, नियम एवम् आचरण सम्बन्धी बातें तथा परीक्षा प्रणाली का सहारा लेना पड़ता है। ये सब मिलकर महाविद्यालय को एक संस्था का रूप प्रदान करते हैं।

संस्था के अन्तर्गत चार प्रकार की संस्थाओं का उल्लेख है-

(क) आर्थिक

(ख) राजनीतिक

(ग) धार्मिक

(घ) शिक्षण

<u>आर्थिक संस्था :</u> भोजन, वस्त्र और मकान मानव की मूल भौतिक आवश्यकताएं हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव द्वारा सचेष्ट प्रयत्न किये जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक सम्बन्धों एवम् संस्थाओं का जन्म होता है।

सिद्धान्ततः ये ही आर्थिक संस्था के अन्तर्गत उल्लेखित हैं। यथा-सम्पत्ति,

द्रव्य एवम् साख, फैक्ट्री प्रणाली, निगम, मजदूरी प्रणाली, मजदूर संघ एवम् मालिक संघ, ठेका प्रतियोगिता, एकाधिकार- सहयोग- विशेषीकरण, श्रम विभाजन, वितरण प्रणाली, बाजार एवम् विनिमय आदि। ये ही मुख्य रूप से आर्थिक संस्था हैं, परन्तु वर्तमान समय में हमें दो प्रमुख आर्थिक व्यवस्थाएं देखने को मिलती हैं— पूंजीवादी एवम् समाजवादी। इन आर्थिक संस्थाओं ने आधुनिक मानव समाज को विशेष रूप से प्रभावित किया है। परिवार एवम् विवाह, स्त्रियों की स्थिति, औद्योगीकरण, नगरीकरण, मनोरंजन, सामाजिक विघटन, नवीन वादों का उदय, धर्म, राजनीति, संस्कृति सभ्यता विशेष रूप से प्रभावित हैं।

<u>राजनैतिक संस्था</u> : प्रत्येक समाज में नियंत्रण व्यवस्था, उसके स्थायीपन के लिए अतिआवश्यक है। पुरा एवम् प्राचीन समाज, परिवार, धर्म, नैतिकता, रीतिरिवाज, प्रथा एवम् रूढ़ियों के द्वारा नियंत्रित एवम् शासित थे किन्तु समाज की उन्नति एवम् बढ़ती हुई जटिलता के कारण नियंत्रण के साधन भी बदल चुके हैं। आर्थिक विकास में अभिवृद्धि तथा औद्योगीकरण के बदलते रूपों के कारण जब अनौपचारिक साधन पर्याप्त न रहे तो मानव ने राज्य एवम् सरकार को सामाजिक नियंत्रण का कार्यभार सौंप दिया। इस प्रकार राज्य नागरिकों के लिए आन्तरिक सुरक्षा, बाह्य शत्रुओं से रक्षा, सम्पत्ति, जीवन सुरक्षा एवम् न्याय

दिखाने का कार्य करता है ।

राज्य एवम् सरकार समाज की अति महत्वपूर्ण राजनैतिक संस्थाएं हैं । ये ऐसे कानून बनाते हैं जो उसके भू-क्षेत्र पर रहने वाले सभी लोगों पर लागू होता है । राज्य ही ऐसी संस्था है जो समुदाय के सभी सदस्यों के लिए सुविधाओं का समान वितरण, अधिकारों एवम् कर्तव्यों का निर्धारण कर समाज में शान्ति एवम् स्थायित्व कायम रखती है ।

मूलतः राज्य सामाजिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन है । पुलिस, न्यायालय, जेल एवम् कानून के द्वारा यह अपने भू-क्षेत्र में सामाजिक नियंत्रण स्थापित करता है ।

<u>धार्मिक संस्था :</u> धर्म मानव समाज का ऐसा व्यापक स्थायी एवम् शाश्वत तत्व है जिसको समझे बिना किसी मानव समाज के रूप को समझने में असफल रहेंगे । वर्तमान में वैज्ञानिक प्रगति के कारण कई मानव समाज या तो धर्मनिरपेक्ष हो गये हैं या धर्म में रूचि कम रखते हैं और धार्मिक विश्वासों की वैधता को स्वीकार नहीं करते । धर्म मानव का अलौकिक शक्ति से सम्बन्ध जोड़ता है । इसका सम्बन्ध मानव की भावनाओं, श्रद्धा एवम् भक्ति से है । धर्म मानव के आन्तरिक जीवन को ही प्रभावित नहीं करता वरन् उसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवम् आर्थिक जीवन को भी प्रभावित करता है ।

महत्व की दृष्टि से धर्म संस्कृति का एक अंग है। यह मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों की पूर्ति करता है। यही कारण है कि धर्म आदिकाल से लेकर आधुनिक समय तक सभी मानव समाजों में धर्म देखने को मिलता है। धर्म नैतिक मूल्यों के महत्व को स्पष्ट करता है। नैतिकता का बोध मनुष्य में आत्मनियंत्रण की भावना उत्पन्न करता है। इस प्रकार वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से धार्मिक संस्थाओं का अत्यधिक महत्व है। यह मानव समाज के संगठन का आधार प्रस्तुत करता है। नियंत्रण का प्रभावपूर्ण साधन व्यक्तित्व के विकास में सहायक, भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक नियमों एवम् नैतिकता की पुष्टि, सामाजिक परिवर्तन पर नियंत्रण पवित्रता का सम्पादक, कर्तव्य निर्धारक और साथ ही समाज को मनोरंजन प्रदान करता है।

यद्यपि धर्म रूढ़िवादी प्रकृति तथा यथास्थिति बनाये रखने का समर्थक है परन्तु आधुनिक तार्किक समाज की द्रुतगति से बदलती हुई परिस्थितियों के परिवेश में यह अपने को बचा नहीं पाया। इस प्रकार दिन प्रतिदिन अपने महत्व को खोता जा रहा है।

<u>शिक्षण संस्था :</u> मानव द्वारा आदिकाल से ही ज्ञान का संचय किया जा रहा है। प्रत्येक नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी से कुछ ज्ञान विरासत के रूप में प्राप्त करती है। और कुछ स्व परिश्रम से अर्जित

करती है। मानव की प्रत्येक पीढ़ी में सीखने की प्रक्रिया की सहायता से और हस्तान्तरण द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती गयी है।

आधुनिक युग में अनेक शिक्षण संस्थाएं प्रत्यक्ष रूप में औपचारिक एवम् व्यवस्थित ढंग से शिक्षा प्रदान कर रही हैं। जिसके परिणामस्वरूप मानव अपनी मानसिक, आध्यात्मिक, तकनीकी और सामाजिक प्रगति की है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षण संस्था एक ऐसी संस्था है जिसका उद्देश्य बालक में मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवम् भौतिक गुणों का विकास करना है, जिससे कि वह सम्पूर्ण पर्यावरण के साथ अनुकूलन कर सके। शिक्षा मानव के आन्तरिक एवम् बाह्य गुणों का विकास करती है। मूलतः शिक्षण संस्था के दो मुख्य कार्य हैं :

(क) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित बनाकर उसकी बौद्धिक क्षमता में वृद्धि करती है।

(ख) विभिन्न संस्कृतियों एवम् रूढ़ियों के लोगों में समझ का विकास करके उनमें व्याप्त भ्रम को दूर करना है। यह कार्य विभिन्न शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से ही होता है। जो समाज में विद्यमान है। इनमें टकराव, तनाव, संघर्ष की स्थिति से छुटकारा मिल जाता है।

प्राथमिक अवधारणा

डा० लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म, प्रारम्भिक पालन-पोषण ग्रामीण संस्कृति की उपज है। उनकी रग - रग में पूर्णरूपेण गांव की संस्कृति, सभ्यता का अंश देखा जा सकता है। प्रारम्भिक नाटक अंधा कुआं, मादा कैक्टस, तोता- मैना, सूखा सरोवर आदि नाटक इसके प्रमाण हैं। इसके बाद के नाटक भी पूर्णरूपेण नगरीकरण की प्रवृत्ति का ही पोषण नहीं करते हैं। यथा : ' दर्पण,' ' एक सत्य हरिश्चन्द्र,' रक्त कमल, यक्ष प्रश्न आदि। डा० लाल अपनी मूल संस्कृति से ऊपर उठते हुए पाये जाते हैं। उनका जीवन जैसे - जैसे विकास करता गया, उसी प्रकार उनके नाटक की कथा भी आधुनिकता की चादर ओढ़ती गई।

मूल रूप से यहां पर समुदाय, समिति, संस्थाओं को प्रस्तुत किया गया है। समुदाय का विवेचन पूर्व ही प्रस्तुत हो चुका है। वैसे डा० लाल या अन्य कोई भी नाटककार व्यक्ति, समाज एवम् उसकी क्रिया-कलापों को ही अपने साहित्य में बनाता, संवारता है। व्यक्ति एवम् समाज के अलावा साहित्य का अन्य विषय होना विषयान्तर ही कहा जायेगा।

समुदाय: समुदाय की उपयोगिता : डा० लाल का " मिस्टर अभिमन्यु " नाटक

"समुदाय" की उपयोगिताओं को अपने अन्दर समेटे हुए है। "बाबा" नामक पात्र के मुख से वे अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत किये हैं। "बाबा" जो कि नाटक के बुजुर्ग पात्र हैं, गांव की उपयोगिता का वर्णन जगमन और पंचम को बताते हैं। उनका कथन है कि यदि गांव समुदाय की तरह रहे तभी उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

> बाबा : पूरा गांव जब एक समुदाय हो- एक परिवार की तरह, तभी तो पंचायत होगी- तभी तो पंच परमेश्वर होंगे- नहीं तो देखो न पंचायत चुनाव में क्या हो रहा है। यह पूरी जमीन, खेत, बाग-बगीचे, पोखर, कुआं, गांव की यह सारी धरती पूरे गांव की थी - पूरा गांव एक परिवार था—एक समुदाय।[१]

<u>ग्रामीण समुदाय की विघटनकारी प्रवृत्तियां :</u> समुदाय का चित्रण करते हुए डा० लाल ने आधुनिक काल में समुदाय की विघटनकारी प्रवृत्तियों का भी उल्लेख किया है। वर्तमान में समुदाय (ग्रामीण समुदाय) विघटन की स्थिति से गुजर रहा है। सामान्य उद्देश्य तथा निश्चित भू-भाग का अभाव दिखाई पड़ रहा है। समुदाय की सबसे छोटी इकाई परिवार के विघटन का शिकार है। ग्राम समुदाय जो कि एक अभिन्न जन-समुदाय था, सभी सदस्य एक परिवार की हैसियत

१- पंचपुरुष, पृ०- ११

से रहते थे, एक " प्रेम की भावना " पाई जाती थी, अब आपसी बैर के कारण समाप्त होता जा रहा है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण डा० लाल का नाटक " पंचपुरूष " है। बाकुल और मनोहर जो कि ग्रामपंचायत चुनाव के प्रतिनिधि हैं, सर्वसम्मत से चुनाव न कराके एक ही गांव में शत्रुता जैसा व्यवहार कर रहे हैं। " कन्हाई " नामक पात्र इस तथ्य को उजागर करता है।

कन्हाई : अरे रे रे। फिर लाठी चल गयी बाकुल सिंह और मनोहर में।[1]

डा० लाल द्वारा विघटन की तुलना एक भयंकर टूटे हुए पहाड़ से करते हैं। " बाबा " के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त करते हुए वे कहते हैं :

बाबा : यही तुम्हारी पहाड़ टूटने वाली बात सिर में टकरा रही है। कभी देखा है टूटा हुआ पहाड़ ? सुना है मैंने अपने पिताजी से। वह पैदल बद्रीनाथ धाम गये थे। वह बताते थे गंगोत्री के पास पहाड़ टूटकर गिरा पड़ा था- भयंकर विकराल था वह दृश्य, बताते-बताते रो पड़े थे। --- दूसरी बार फिर रोये थे- मरने से पांच दिन पहले रो रोकर कहने लगे-

---

1- पंचपुरूष, पृ०- ११

और पंचानन बेटा पड़ा, तो अपने गांव में भी टूटा
लार्ड कार्नवालिस का वह इस्तमरारी बन्दोबस्त । जहां
सब भूमि गोपाल की थी, जो गांव की धरती माता थी,
सबकी समान, वह उसके हाथों काट-पीटकर बिक गई,
जिसने उसे खरीदा ।[1]

इस प्रकार डा० लाल समुदाय की प्रारम्भिक अवस्था, उसके गुण एवम् आधुनिक काल में समुदाय की स्थिति का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है । वर्तमान में गांव या परिवार विघटन की प्रवृत्ति से ग्रसित है । सम्पूर्ण देश संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है । यथा:

जगमा : अभी तो पंचानन बाबा कह रहे थे- ऐसी दशा में ग्राम पंचायत का चुनाव मत करो । यह चुनाव नहीं डाकाजनी है--- ।

बाबा : ------जन्म के आधार पर जाति नहीं थी, काम-धन्धा के मुताबिक थी ।[2]

<u>संस्था :</u> समिति एवम् संस्था दोनों ही एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं । दोनों को एक दूसरे के सम्बन्ध में समझा जा सकता है । संस्था के अन्तर्गत चार प्रकार की संस्थाओं का उल्लेख करना है—धार्मिक,

---

१- पंचपुरुष, पृ०- ११ - १२
२- -वही- पृ०- ३२०

राजनीतिक, धार्मिक, शिक्षण ।

भोजन, वस्त्र एवम् मकान मानव की मूल भौतिक आवश्यकताएं हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव द्वारा सचेष्ट प्रयत्न किये जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप आर्थिक सम्बन्धों एवम् आर्थिक संस्थाओं का जन्म होता है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने `रातरानी` नामक नाटक में इसका पूर्ण वर्णन किया है।

(क) <u>आर्थिक : आधुनिक आर्थिक परिस्थितियां : श्रमिक एवम् पूंजीपति : का संघर्ष, समाजवाद की मान्यता :-</u> डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक विशेष रूप से समाज की आधुनिक आर्थिक परिस्थितियों से जूझते नजर आते हैं। डा० लाल ने पूंजीपति एवम् श्रमिक संघर्ष का उदाहरण अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है। पूंजीपतियों का शोषण एवम् मजदूरों की अधिकार लिप्सा की भावना चारों ओर पर दिखाई पड़ रही है। इसके साथ ही उनके नाटकों में मजदूर श्रमिक संगठन की स्थापना उनकी पूंजीपतियों से अधिकार-स्वरूप मांग आदि विषय प्रमुख हैं। डा० लाल का नाटक `रातरानी` इस तथ्य का साक्षात उदाहरण है। जयदेव बाबू प्रेस इण्डस्ट्री के मालिक हैं। अन्य व्यक्ति उस प्रेस में मजदूर स्वरूप काम करते हैं :

सारंग : मैं भी तो मालिक आपकी ही फैक्ट्री का
एक मजदूर था।[१]

पुनः, महावीर, जो कि एक पूंजीपति वर्ग के सदस्य हैं, एक आर्थिक संस्थास्वरूप फैक्ट्री की स्थापना करने जा रहे हैं जिसमें अनेक मजदूर होंगे, उनका शोषण होगा और पूंजीवादी व्यवस्था आगे बढ़ेगी। वे कहते हैं :

महावीर : मैं पुनः औदाय फैक्ट्री की स्थापना करने
जा रहा हूं, जिससे अनेक गरीब मजदूरों को
जीवन-यापन करने का अवसर मिलेगा।[२]

फैक्ट्री की स्थापना करवाकर डा० लाल अपनी मंजिल की तरफ बढ़ते हैं। वर्तमान में श्रमिक एवम् पूंजीपति का संघर्ष अत्यन्त जोरों पर है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जयदेव बाबू एवम् प्रेस वर्कर्स यूनियन के बीच देखा जा सकता है। जयदेव का शोषण कार्य घर से ही प्रारम्भ होकर, प्रेस में चरम बिन्दु पर पहुंच जाता है। भतीजे के माली को घर में भोजन न खाने देकर उसे स्वयं निर्भर रखने के लिए विवश करते हैं जिसका परिणाम यह हुआ कि वह दिनभर भूखा ही

१- रातरानी, पृष्ठ- ८२

२- वही- पृ०- ८५

रह जाता है। पुन: प्रेस में सिपाहीलाल स्वम् जयदेव बाबू का संघर्ष जारी है। यथा :

> जयदेव : अब प्रेस बिलकुल ठीक चल रहा है, जबसे उस बदमाश सिपाहीलाल को प्रेस से बाहर निकाल दिया तब से प्रेस में शान्ति है।[१]

इस नाटक में स्वयं जयदेव की पत्नी ही प्रेस श्रमिकों की समस्याओं को लेकर जूझती है। वह उनके गरीब बच्चों की अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करती है। कुंतल के शब्दों में -

> एक सिपाहीलाल को ही निकाल देने से ही मजदूर प्रेस की समस्या थोड़े ही खत्म हुई है। मैं नहीं समझ पाती तुम प्रेस के कर्मचारियों को उनका बोनस क्यों नहीं देते।[२]

यह संघर्ष आगे बढ़ता है। कर्मचारी जयदेव का पीछा करते हुए आते हैं। जयदेव घर में घुस जाता है और पत्नी को भी उनसे बात करने को मना करता है। पर कुंतल नहीं मानती है। वह श्रमिकों से बात करने के लिए आगे बढ़ती है और लिखित रूप में श्रमिकों की शिकायत प्राप्त करती है। कुंतल माली से श्रमिकों को फल

१- रातरानी, पृ०- ६२

२- -वही- पृ०- ६२

दिखाते हुए कह उठती है :

हे हाँ --- इस फल में तुम्हारा भी हिस्सा है, यह भूल नहीं, अधिकार है तुम्हारा ।[1]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने यह भी स्वीकार किया है कि अतिरिक्त लाभ के हिस्से में मजदूरों का बराबर का अधिकार है । यह भावना मार्क्स के " अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त " का समर्थन करती है । मार्क्स पूँजीपतियों को सुझाव देता है कि लागत के अलावा प्राप्त लाभ को श्रमिकों में बराबर - बराबर बांट देना चाहिए । यह उनका मूल अधिकार है । डा० लक्ष्मीनारायण लाल इस तथ्य को भी अपने नाटकों में पूर्णरूपेण स्थान प्रदान किया है । उनका प्रतिनिधि पात्र " जयदेव " इस बात को अन्ततः स्वीकार कर लेता है ।

जयदेव : तुम्हारी बातें ठीक हैं । मांगें जरूर पूरी होनी चाहिए ।[2]

कुंतल, जो कि जयदेव बाबू की पत्नी हैं, जब उसे निरंजन के द्वारा यह समाचार प्राप्त होता है कि श्रमिकों की क्रुद्ध भीड़ उसके घर की तरफ आ रही है तो वह उनसे शांतिवार्ता के लिए जाने जाती है । वह पुलिस प्रहार व श्रमिकों के द्वारा फेंके गये पत्थर का प्रहार

१- रातरानी, पृ०- ६२

२- -वही- पृ०- ६२

स्वयं अपने ऊपर सह लेती है। वह उनकी बातों को सुनती है। अन्ततः वह कुछ शब्दों में पूंजीपतियों को सुलब्दों के द्वारा समझाती है।

कुंतल : " धन और अधिकार की समस्या " इस बार मनुष्य जब धन संग्रह करना शुरू कर देता है, तब वह अपने संग्रह के उद्देश्य को भूल जाता है और तब वह धन के नशे में यह भी भूल जाता है कि इस धन का कमाने वाला कौन है ? उसका उसमें कितना हिस्सा है।[1]

अन्ततः डा० लाल " कुंतल " को " पद्मेश " के अधिकार क्षेत्र से निकाल कर मजदूर वर्ग में शामिल कर देते हैं। घर के पास आती हुई मजदूरों की भीड़ में कुंतल मिलने को आतुर हो जाती है, वह पुलिस द्वारा लाठीचार्ज करने पर स्वयं ही सम्पूर्ण प्रहार सहती है, साथ ही मजदूर द्वारा चलाये गये पत्थर की चोट अपने ऊपर सहर्ष सह लेती है।

इस प्रकार डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने पूंजीपति वर्ग को अनेक प्रकार से समझाया है, और पूंजीपतियों को मजदूरों के सुख- दुःखों में भागी बनने के लिए उत्साहित भी किया है। इसका प्रमाण नाटक " रातरानी " का सम्पूर्ण कथानक है।

(ख) राजनैतिक संस्था : चुनाव से लेकर शासन कार्य तक कुशलता का अभाव : वर्तमान में प्रजातन्त्र अपने वास्तविक रूप को खोता जा रहा है

१- रातरानी, पृ०- १०४

यहां पर प्रजातंत्र के नाम पर अधिकार तंत्र का राज्य व्याप्त है। "मतदान" जो कि प्रजातन्त्र का मूल है, उसको भी सुचारु रूप से सम्पन्न नहीं होने दिया जा रहा है। मतपेटियों की लूटाई, मतदान केन्द्रों पर जबरन कब्जा आदि कार्य दिन- प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। डा० लाल ने इस तथ्य को अपने नाटक "राम की लड़ाई" में स्थान दिया है।

शाह जी : एक बूथ की लूटाई में पांच हजार रूपये।[१]

डा० लाल ने शासन कार्य की असफलता के तरफ भी लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। उनके अनुसार नेताओं का चरित्र भ्रष्ट होता जा रहा है जो कि वास्तव में सत्य है। साथ ही शासन कार्य के कागजीपन का भी उल्लेख किया है। जिस प्रकार शासकीय अधिकांश कार्य केवल कागज पर ही होते हैं। योजनाएं कागज पर ही बनती हैं और कागज पर ही पूरी कर ली जाती है। ये वास्तविकता से दूर ही रहती है। डा० लाल के नाटक "राम की लड़ाई" नामक नाटक में सरकार के इस चरित्र को देखा जा सकता है।

मसखरा : अपने आप को राजनीति का आदमी मत कहो।
भ्रष्ट राजनीति का पशु कहो ------। और मुझे क्यों मारते हो ? मैं तो आपकी प्रजा हूं।

१- राम की लड़ाई, पृ०- २०

उन्नीस सौ सत्तावन में पांच कुएं खोदे गये कागज पर-- ढाई हजार की कुआं, सन् साठ में तीन तालाब पाटे गये, जबकि तालाब थे ही नहीं । ------ ।[1]

सामंतवाद का पतन : आधुनिक राजनीति में प्रजातंत्र की अकुशलता: डा० लाल स्वयं उनके क्रियाकलापों का अल्प उल्लेख ही किया है । नाटक`सूर्यमुख` का प्रारम्भ एक प्राचीन नगरी ` द्वारका ` से हुआ है । यहां पर राजप्रासाद की स्थिति, आपसी झगड़े आदि को लेकर कथा अग्रसर होती है । नाटक के देश स्वयं काल से ही पता चल जाता है कि आधुनिक काल में दुर्ग व्यवस्था का समापन हो गया है । ` समय : सन्ध्या ` ही इस बात की प्रतीक है । साथ ही दुर्ग के मैदान में बैठे भिखारी उसकी जीर्ण- शीर्ण अवस्था के प्रतीक हैं । मूलरूपेण दुर्ग प्राचीन काल में राजनैतिक संस्था का मूल अंग था । वहीं से सारी गतिविधियां चलाई जाती थीं । वह राज्य के नेतृत्व कारक का निवास - स्थान था, राजा ही राज्य का प्रतिनिधि था । पर वर्तमान काल में न तो दुर्ग ही रह गये न तो राजा ही ।

स्थान : द्वारका का राजदुर्ग ।[2]

क्रमश:

१- राम की लड़ाई, पृ०- २०
२- सूर्यमुख, पृ०- १

राजा : मैं तो कुछ भी नहीं हूं ------ ।[१]

आधुनिक युग में, प्रजातंत्र में राज्य के स्वीकरण एवम् नियंत्रण की समस्या जोरों पर है। चुनाव से लेकर शासन कार्य करने तक कुशलता का अभाव पाया जा रहा है। पंचायत के चुनाव की अव्यवस्थित दिखाकर डा० लाल प्रजातन्त्र की असफलता को प्रमाणित करते हैं। नाटक " पंचपुरुष " में " जामा " के माध्यम से सम्पूर्ण अव्यवस्था का चित्र प्रकट होता है।

जामा : सरकार तो दिल्ली में बैठी है। उसे क्या पता गांव में क्या हो रहा है। गांव है भी अब कहीं। और यह गांव था बाबा परबाबा के जमाने में जब अंग्रेज राज नहीं था। पंचानन बाबा बताते हैं- तब पंचपरमेश्वर होते थे, हां --- ।[२]

उपर्युक्त उदाहरण से वर्तमान व्यवस्था का चित्र आंखों के समक्ष उपस्थित हो उठता है। डा० लाल का नाटक सरकार की नेतृत्वहीनता एवम् राजनीतिक उद्देश्यहीनता को प्रस्तुत करता है।

डा० लाल की मानसिकता है कि " राजा प्रजा से है, प्रजा के द्वारा है तथा प्रजा के लिए है।" इसका वर्णन डा० लाल के नाटक " सूखा सरोवर " में देखा जा सकता है। यहां पर " राजा " कुछ

१- सूखा सरोवर, पृ०- ५२

२- पंचपुरुष, पृ०- ६

अपनी मुख से उस व्यवस्था को स्वर प्रदान कर रहा है। छोटे राजा के सिंहासन अभिषेक की बात के उत्तर में राजा जवाब देते हैं- यह सिंहासन अब प्रजा का हो गया है, प्रजा जिसको चाहेगी उसका उस पर अभिषेक होगा।

राजा : फिर अभिषेक कैसा ?

छोटे राजा : वह अभिनय, जिसे तुमने किया था, नगरी प्रजा
के बीच, और मैं चुपचाप खड़ा था------
(राजा को हंसी आ जाती है)

राजा : मैं तो कुछ भी नहीं हूँ
अब कुछ प्रजा है।
उसने मुझे प्रतिनिधि चुना है।[1]

<u>अहिंसात्मक राजनीतिक संस्था की स्थापना :</u> डा० लाल अहिंसात्मक राजनीतिक संस्था की स्थापना में विश्वास करते हैं। नाटक "सूखा-सरोवर" में वे हिंसा को बिल्कुल उचित नहीं समझते। डा० लाल के अनुसार प्रजातंत्र को सफल बनाने के लिए विवेक, सदाचार तथा प्रजावत्सलता अतिआवश्यक है। छोटे राजा के बर्बरतापूर्ण व्यवहार को देखकर राजा स्वयं ही राजसिंहासन छोड़कर चले जाते हैं, उसके पूर्व राजा, छोटे राजा को राजसिंहासन पर बैठाकर कहते हैं------

---

१- सूखा सरोवर, पृ०- ५२

राजा : (विश्वास भरकर) हां मैंने अभिषिक्त किया तुमको ।

(बाहर की ओर धीरे- धीरे राजा बढ़ते हैं)

---- राजा बाहर अदृश्य हो जाते हैं ।[१]

डा० लाल का प्रयास यहीं पर रूक नहीं जाता है । राजमाता से भी अहिंसा का पालन करवाते हैं । छोटे राजा को सिंहासन पर बैठे देखकर सैनिक वार करना चाहता है, पर राजमाता उसको ऐसा कृत्य करने से मना करती हैं और कह उठती हैं :

राजमाता : यदि हम प्रतिशोध लें तो पहले हम उस राजा के

प्रतिभागी होंगे जिसने सब कुछ त्याग किया ।[२]

इस प्रकार डा० लाल की उदार अहिंसात्मक प्रवृत्ति यहां पर अपने चरम बिन्दु पर पहुंच जाती है ।

(ग) धार्मिक संस्था : भारतीय संस्कृति एवम् हिन्दू धर्म : डा० लाल के नाटक इस परिप्रेक्ष्य में भी विचारणीय हैं । इनके नाटकों का अध्ययन करने के उपरान्त ऐसा प्रतीत होता है कि डा० लाल हिन्दू धर्म के पुजारी हैं । डा० लाल ने देवालय के निर्माण के प्रति जन-सहयोग का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है । साथ ही धर्म की सामाजिक

१- सूखा सरोवर, पृ०- ६२

२- - वही - पृ०- ६५

नियंत्रण के महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके नाटकों में धर्म के गिरते प्रभाव को भी देखा जा सकता है। डा० लाल ने धर्म के क्षेत्र में समानता की भावना का भी उल्लेख किया है। इन्होंने प्राचीन रूढ़ि (केवल ब्राह्मण वर्ग मन्दिर में प्रवेश कर सकता है एवम् धार्मिक पुस्तकों का प्रवचन कर सकता है) का खण्डन किया है।

आधुनिक तार्किक समाज : डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने अपनी नाटक "यक्षपुरुष" में धार्मिक संस्था के रूप में धर्म का प्रारम्भ से लेकर आजकल के समाज का सुन्दर चित्रण किया है। जिस प्रकार किसी धर्म का प्रतीक रूप मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा आदि होते हैं और उसके निर्माण में सम्पूर्ण धार्मिक समुदाय एकत्र होकर निर्माण कार्य पूरा करता है, उसी प्रकार की धार्मिक प्रवृत्ति डा० लाल के नाटक "यक्ष पुरुष" में भी देखी जा सकती है।

बाबा : ठाकुर मन्दिर बनकर पूरा हुआ
मथुरा अयोध्या काशी से भगवान की मूर्तियां बनकर आयी हैं।[1]

इस मन्दिर के निर्माण में सम्पूर्ण जनसमुदाय का सहयोग रहता है। प्रत्येक स्वधर्म पालक अपने धर्म के कार्य में हिस्सा बटाकर अपने को कृतार्थ समझता है। धर्म में यह अनिवार्य माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति

१- यक्षपुरुष, पृ०- १६

तन, मन, धन तीनों से ईश्वर की आराधना के लिए तैयार रहता है। उदाहरण स्वरूप यही नाटक देखा जा सकता है। यहाँ पर "वीर सिंह" की अध्यक्षता में निर्माण कार्य हो रहा है। वह "उजमा" नामक युवक को सम्पूर्ण ग्राम की एकाग्रता एवम् धर्मनिष्ठता की भावना को समझाता है।

माटी : " और यह भी उजमा है- पढ़ने जा रहे है।"

वीर सिंह : क्यों रे तुझे पढ़ाई सूझी है- सारा गांव - बजार ठाकुर जी के काम-काज में लगा है।"[1]

<u>बौद्धधर्म :</u> डा० लाल का प्रिय धर्म बौद्ध धर्म है। उनके अनुसार बौद्धधर्म अपनी अहिंसात्मक प्रवृत्ति, जनसेवा, जीवों पर दया करने के लिए जग प्रसिद्ध है। "दर्पण" नामक नाटक में पूर्णी उस संस्था के संस्कार को कर्मरूप में अभिव्यक्त करती है। नायक हरिपद्म को संकटावस्था में देखकर स्वयं उसके साथ स्टेशन पर उतर जाती है। वह हरिपद्म की अनन्य भाव से सेवा करती है। पुनः उसके घर आकर उसके छोटे भाई सुजान को भी स्वस्थता प्रदान करती है। उसके साथ ही वो अन्य रोगियों की सेवा करके उनका भी चित्त जीत लेती है-

हरिपद्म : और तुम्हारा सारा परिवार बौद्धधर्म का अनुयायी भी है। तुम्हारी दर्पण अब साधारण बौद्ध भिक्षुणी है।[2]

१- मैं पुरुष, पृ०- २०

२- दर्पण, पृ०- २६

दर्पण में डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने माना है कि " मनुष्य ही ईश्वर है, या साक्षात ईश्वर की अभिव्यक्ति जीवों में मानी है। उनका ईश्वर किसी दिव्य लोक में विराजमान नहीं है। वह संसार के कण-कण में विद्यमान है। डा० लाल ने इस भावनात्मक अभिव्यक्ति को " दण्डी " के माध्यम से व्यक्त किया है। दण्डी " पूर्णी " को साक्षात ईश्वर का अवतार मानता है। वह उसे माँ कहकर पुकारता भी है।

दण्डी : दर्पण में ही मैंने उस ईश्वर का साक्षात्कार किया है।

[illegible] : ईश्वर का साक्षात्कार ?

दण्डी : यह संसार क्या है? उस ईश्वर का ही तो दर्पण है जिसमें जो चाहे, जब चाहे, अपना दर्शन पा सकता है।"[1]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल शंकराचार्य के आत्मा विषयक सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। उनका जीव विषयक सिद्धान्त " सर्वं खल्विदं ब्रह्म ", "तत्वमसि " का ही विस्तार है। यहाँ पर " ठकुरानी " सम्पूर्ण जीवों की समानता का उपदेश देती है।

ठकुरानी : केवल इतना समझती हूँ- आकाश के नीचे जिस पृथ्वी पर चाँद और सूरज के प्रकाश में हम सब समान रूप से खड़े हैं, यह साबित करता है, हम सब एक हैं, समान हैं।[2]

१- दर्पण, पृ०- ६२

२- पंचपुरुष, पृ०- ६१

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में आधुनिक मानव की तार्किक प्रवृत्ति एवं वैज्ञानिक प्रभाव का दर्शन भी होता है। उन्होंने धर्म के धीरे - धीरे घटते हुए प्रभाव को प्रदर्शित किया है। प्राचीन काल में पुजारी को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। उसी के नेतृत्व में सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाकलाप हे सम्पन्न होते थे, परन्तु आधुनिक समय में इन पण्डा, पुजारियों का प्रभाव कम होता जा रहा है। "सूखा सरोवर" नामक नाटक इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यहाँ धार्मिक क्रिया-कलाप के प्रति उदासीनता दृष्टिगोचर होती है-

पृष्ठभूमि की आवाज : तुम सब धीरे- धीरे धर्मच्युत हो गये,
राजा से तर्क करने लगे तुम राजा को
व्यक्ति मानने लगे तुम ईश्वर पर शंका
करने लगे तुम दान, पुण्य, लोकाचार
धर्माचार सबको छोड़ते गये तुम जो
कुछ धर्म था, धर्म जनित कर्म था, सबसे,
सबको, सब तरह तोड़ते गये तुम।
सबको आडम्बर कहा।
ज्ञानी तुम बन गये
इसी धर्म ने सरोवर को सोख लिया।[१]

"सूखा सरोवर" का यह अंश स्पष्ट रूप से वर्तमान समाज का चित्र उपस्थित कर रहा है। सभी व्यक्ति अपने को ज्ञानी समझता

१- सूखा सरोवर, पृ०- २०

है। लोभ उसका अभिन्न अंग बन चुका है। एक जीव दूसरे की हत्या करने में लगा हुआ है। जातिवाद का नारा बुलन्द हो रहा है। नाटक पंचपुरुष में ईश्वर की अभिव्यक्ति स्वरूप स्थापित मूर्ति जन-समुदाय द्वारा स्वयं ही खण्डित एवं चुरायी जा रही है। आधुनिक काल में जब धार्मिक प्रतीक ही तोड़ा जा रहा है, तो धर्म का अस्तित्व ही कहां तक रह जायेगा? 'पंचपुरुष' में पुजारी स्वयं को मूर्ति की रक्षा में अक्षम पाकर जन की गुहार लगाता है, फिर भी मूर्ति नहीं बच पाती।

पुजारी : हे भगवान आप ठाकुर की मूर्ति तोड़ी।

पुजारी : दौड़ो, भागो, गोहार लगाओ, गोहार---

पंचम : हमारे ठाकुर भगवान को कौन ले गया।[1]

'पंचपुरुष' का नायक 'उपमा' स्वयं 'श्रीराम' का वेश धारण करके उन्हीं की यश, कीर्ति का कथन करता है। यथा- जब 'गंगाजली' उस वेशधारी राम (उपमा) का पैर छूने को बढ़ती है तो वह उसे मना करता है :

गंगाजली : चरण छूती हूं भगवान के।

उपमा : मैं कहां का भगवान : मेरी ऐसी मत करो। किसी के कहने या मानने से कोई भगवान नहीं हो सकता है---।[2]

१- पंचपुरुष, पृ०- १५

२- वही- पृ०- ३०

डा० लाल मूर्ति-खण्डन का भावनात्मक स्वरूप भी प्रस्तुत कर देते हैं। मूर्ति तोड़ने के बाद जनमानस में वही राम की अदारूपी मूर्ति का विखण्डन हो जाता है।

वर्ण और जाति की चुनौती : डा० लाल " वर्ण और जाति की चुनौती " आधुनिक युग में व्याप्त ऊँच- नीच की धार्मिक प्रवृत्ति को भी ललकारा है। " पंचपुरूष " नाटक में जब मन्दिर बनकर तैयार हो जाता है, तब राजा निम्न वर्ण को मन्दिर प्रवेश से रोकना चाहता है। डा० लाल इस भावना का खण्डन करते हैं। " उत्मा " के नेतृत्व में सबको मन्दिर में जाने का अधिकार प्रदान करते हैं।

उत्मा : मन्दिर में हम प्रवेश करेंगे।

बाबा : मन्दिर हमारी धरती पर हमारे हाथों से बना है।

उत्मा : मन्दिर हमारा है।[१]

प्राचीनता का कुछ परिवेश यहाँ देखा जा सकता है तो नवीनता का खण्डनात्मक पक्ष भी आँखों से ओझल नहीं है।

(ब) शिक्षण संस्था : मानव द्वारा आविष्कृत है कि ज्ञान का संचय किया जा रहा है। प्रत्येक नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी द्वारा कुछ ज्ञान विरासत के रूप में प्राप्त करती है। इसके साथ ही अनेक शिक्षण

१- पंचपुरूष, पृ०- ६०

संस्थाएं औपचारिक रूप से समाज को शिक्षा प्रदान कर रही हैं। समाज में परिवार क्रीड़ा समूह, व्यावसायिक संगठनों के अलावा औपचारिक शिक्षण संस्था (विद्यालय) भी वर्तमान काल में शिक्षा प्रसार में अग्रणी है।।

प्राचीन शिक्षण व्यवस्था की खिल्ली : डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक " सुन्दर रस " में प्राचीन शिक्षण व्यवस्था का वर्णन प्राप्त होता है। विशेष रूप से डा० लाल ने प्राचीन शिक्षण व्यवस्था की खिल्ली उड़ाई है। पण्डित राम का घर और उनके दो शिष्य "वैनाथ" और " शक्तिसिंह " इस संस्था के आधार स्तम्भ हैं। प्राचीन काल में शिष्यगण गुरु के घर जाकर गुरु की सेवा करते हुए विद्याध्ययन करते थे। शक्तिसिंह और वैनाथ इसी व्यवस्था के तहत शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

पण्डित राम : सावधान : सदाचार सीखो। गुरु और माता-पिता की शिक्षा के बीच कभी नहीं बोलना चाहिए।

वैनाथ : क्षमा गुरुजी[१]

पुनः डा० लाल शिक्षण संस्थाओं की हंसी उड़ाई है। पण्डित राम के शिष्य विवेक और बुद्धि के नाम पर शून्य दिखाई पड़

१- सुन्दररस, पृ०- १०

रहे हैं। गुरुकुल की हंसी भी उड़ायी है। पण्डित राय के घर उनके सहपाठी (गुरुभाई) के० पी० भट्टाचार्य आते हैं। दोनों मिलकर आपस में एक दूसरे के हालचाल के बारे में पूछते हैं। पण्डित राय के कोई सन्तान न होने के कारण के० पी० भट्टाचार्य कुछ गोलमाल का आरोप लगाते हैं और उनका हाथ पकड़ कर नाड़ी देखना प्रारम्भ कर देते हैं, और कह उठते हैं कि " क्या साहित्य का विद्यार्थी नाड़ी देखकर रोग नहीं बता सकता। यह कैसी विडम्बना है। पर शायद उस समय एक व्यक्ति सम्पूर्ण विषय का ज्ञान रखता था, न कि आज कल की तरह विशिष्टीकरण की प्राप्ति थी-

<u>के०पी० भट्टाचार्य :</u> अरे यह क्या बात है ? कोई गोलमाल तो नहीं।

(उठकर पण्डित जी की नाड़ी देखना चाहते हैं। पण्डित राय लोकलाज के डर के कारण दांये - बांये झांकने लगते हैं।

डरो नहीं हां- हां कोई नहीं देखेगा अरे भाई
साहित्य से भी तो नाड़ी देखा जा सकता है।[1]

<u>विद्यार्थियों के आचरण का उपहास :</u> इसके आगे डा० लाल ने विद्यार्थियों के आचरण का भी उपहास किया है। आधुनिक स्तर की गृहिणी बीना शिष्यों के क्रिया-कलाप देखकर हैरान रह जाती है और कह उठती है, क्या ये शिष्यगण पढ़ते हैं—और अपशब्द द्वारा

१- सुन्दररस, पृ०- २२ - २३

सम्बोधित करती है :

सुमिरन : ये लोग शिष्य हैं पण्डित जी के। पढ़ते हैं यहाँ ?

वीना : पढ़ते हैं ?

शक्तिसेन : और नहीं तो क्या ?

वीना : बोलने की तमीज नहीं।[१]

डॉ० लाल ने गुरु की आप्तवादिता का भी भण्डाफोड़ किया है। उनके द्वारा प्रचारित सुन्दर रस को बिल्कुल व्यर्थ सिद्ध किया है एवम् उन पर धोखाधड़ी का आरोप लगाया है। प्रमाण स्वरूप "केदार बाबू" उनके द्वारा निर्मित सुन्दर रस का सेवन करते हैं परन्तु उनके ऊपर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार उनके शिष्यों को यह आरोप सहना पड़ता है कि "बोलने की तमीज नहीं है।" आदि बातें प्राचीन शिक्षा व्यवस्था की अनुपयोगिता को सिद्ध करती है।

केदार बाबू : (सक्रोध) गुस्से से उठकर, कितने धोखे की बात है यह। --- पूरे पाँच सौ इक्यावन रुपये लिये मुझसे। मैंने उसका सेवन किया, लेकिन देखिए मुझमें कोई फर्क नहीं आया। मैं वैसा का वैसा रह गया।[२]

१- सुन्दर रस, पृ०- ४०

२- -वही- पृ०- ४५

<u>गुरु के आदर्श का खण्डन :</u> डा० लाल गुरु के आदर्श के साथ ही आश्रम व्यवस्था के पतन का चित्रण करते हैं। के० बी० भट्टाचार्य के द्वारा शिष्यों के बारे में पूछने पर यह उत्तर देते हैं कि " वे लोग सवा मास से गायब हैं। उन्हें अब मैं कहीं नहीं पढ़ाता हूं।

भट्टाचार्य : और तुम अपने शिष्यों को कहां पढ़ाते हो।

पण्डितराव : कहीं नहीं, आप सवा महीने हो गये, उनका कहीं कुछ पता नहीं।[१]

<u>विद्यार्थियों की चरित्रहीनता :</u> विद्यार्थियों के निकृष्ट कर्मों का भी उल्लेख डा० लाल के नाटकों में मिल जाता है। वैनाथ और शक्तिदेव के वेशभूषा को देखकर गुरु जी का मुख मण्डल क्रोधाग्नि से दमक उठता है।

पण्डितराव : मैंने! मैंने! तुम्हारा यह अति अहंकार अब मुझे पागल बना देगा——
—— गुरुकुल के विद्यार्थी और ये चुस्त किम्खाब, ये सूट बूट, आंखों में काजल, मुख में पान, स्त्रियों की तरह संवारे हुए केश, हट जाओ यहां से। भाग जाओ यहां से।"[२]

विद्यार्थियों की चरित्रहीनता अपनी अन्तिम चरण पर पहुंच जाती

१- सुन्दर रस, पृ०- ६४

२- -वही - पृ०- ६४

हैं। वे पण्डितराम की साली के नाम प्रेम-पत्र प्रेषित करते हैं। गुरु महाराज पत्र प्राप्त करते हैं तो उनके होश उड़ जाते हैं। और अपनी पत्नी के ऊपर पत्र फेंकते हुए " सुन्दर रस " का फल बताते हैं। इस प्रकार डा० लाल अन्ततः विद्यार्थी जीवन की निराशापूर्ण परिणति दिखाते हैं।

> देविया : सुन्दर रस इतना विकार। चरित्र का इतना पतन। वास्तव में यह रस किसी को सुन्दर नहीं बनाता। सुन्दर है तात्पर्य कर्म और चरित्र से सुन्दर। भावना और अन्तःकरण से सुन्दर।[१]

अन्ततः स्वयं देवियों के द्वारा डा० लाल ने सम्पूर्ण सुन्दर रस के ढोंगों की क्वाड़ी के साथ देखाकर यह प्रदर्शित कर दिया है कि आधुनिक शिक्षण संस्थाएं अपने लक्ष्य से बिल्कुल दूर हो गयी हैं। उनके द्वारा सही नेतृत्व स्वम् दिशा नहीं प्राप्त हो रही है, बल्कि समाज का चरण हो रहा है। भ्रष्टाचार की जड़े गहराई तक बढ़ती जा रही है।

<u>डा० लाल के नाटकों का प्राथमिक अवधारणा में रचनात्मक योगदान</u>

डा० लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म स्वतन्त्रता के पूर्व की घटना

१- सुन्दर रस, पृ०- ८२

है । इनके साहित्य सृजन का प्रारम्भ सन् १९५२ ई० के उपरान्त शुरू हो गया था । भारतीय इतिहास में यह समय बहुत-ही महत्वपूर्ण है । इस समय भारतवर्ष में नागरिकों को अपना संविधान एवम् स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी थी । प्रत्येक व्यक्ति स्वच्छन्दतापूर्वक सम्पूर्ण भारतवर्ष में विचरण कर सकता था । विचारकों को स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचार व्यक्त करने की छूट थी ।

इस समय का भारतीय समाज अनेक कुण्ठाओं एवम् अवरोधों से ग्रसित था । अंग्रेजों के द्वारा भारतीय समाज को धर्म, राजनीति, अर्थ, शिक्षा आदि के आधार पर अनेक वर्गों में विभक्त कर दिया गया था । इन्हीं वर्गों के साथ वर्ग की बाधायें प्राप्त हुई थी, वह भी बर्बर रूप में ही दिखाई पड़ रही थी । धर्म के आधार पर भारतीय समाज हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि वर्गों में बंट चुका था । अर्थ के आधार पर श्रमिक एवम् पूंजीपति का उदय हो चुका था । शिक्षा के क्षेत्र में भी दो वर्ग (हिन्दी - अंग्रेजी माध्यम) का उदय हो चुका था । भारतीय समाज में ऊंच - नीच की भावना सर्वत्र व्याप्त हो चुकी थी । ऐसे ही समाज में डा० डाउ का उदय हुआ । साहित्यकार अपने समय की उपज होता है । उसका साहित्य युगीन प्रवृत्तियों से अवश्य ही प्रभावित होता है ।

साहित्य का निर्माण समाज के लिए एवम् समाज में ही होता है ।

साहित्य का दो रूप पाया जाता है। प्रथम प्रकार का साहित्य युगीन प्रवृत्तियों एवम् उन भावनाओं तक ही अपने को सीमित रखता है। इस प्रकार के साहित्य में रचनात्मकता का अभाव पाया जाता है। इस प्रकार का साहित्य युग के समाप्त होते ही प्रायः समाप्त हो जाता है। यथा रीतिकाल का साहित्य। द्वितीय प्रकार का साहित्य युग विशेष से ऊपर उठकर रचनात्मकता की ओर प्रवृत्त होता है। इस प्रकार के साहित्य को अपने समय में अनेक प्रकार की उपेक्षाएं सहनी पड़ती है। पर समय बीतने पर यही साहित्य पूज्य समझा जाने लगता है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्य साहित्य द्वितीय प्रकार की श्रेणी में ही रखा जा सकता है। उनका सम्पूर्ण साहित्य धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, चारित्रिक समस्याओं से भरा पड़ा है। चाहे वह परिवार में व्याप्त दाम्पत्य भावना की कलह से जूझ रहे हों, धर्म के नाम पर जन जीवन में ऊंच- नीच की भावना को समन्वित कर रहे हों या राजनीति के क्षेत्र में गद्दी के लिए लड़ते हुए भारतवासियों की तस्वीर दिखाना चाहते हों, सभी समसामयिक समस्याएं ही हैं।

समुदाय के विषय में डा० लाल का विचार समाजशास्त्रियों के द्वारा प्रदान की हुई परिभाषा से भिन्न है। इस सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण बहुत ही विशाल है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना रखते

चाहे डा० लाल सम्पूर्ण गांव को एक परिवार के समान ही स्वीकार किया है।

> बाबा : यह पूरी जमीन, खेत, बाग-बगीचे, पोखर, कुआं, गांव की यह सारी धरती पूरे गांव की थी - पूरा गांव एक परिवार था- एक समुदाय।[१]

आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शिक्षण संस्थाओं के क्षेत्र में डा० लाल की रचनात्मक भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। आर्थिक क्षेत्र में वे मजदूरों के विशेष हिमायती प्रतीत होते हैं। वे पूंजीपति वर्ग की शोषण प्रवृत्ति के सख्त विरोधी हैं। उनका दृष्टिकोण विशेष कर " कार्ल मार्क्स " के समाजवादी सिद्धान्त से मिलता जुलता है। डा० लाल मजदूर वर्ग की कठिनाइयों को समझता है। उद्योग के क्षेत्र में मजदूर वर्ग विशेष परिश्रम के उपरान्त उत्पादकता को बढ़ावा देता है। इस कठोर परिश्रम के उपरान्त भी वह पेट भर भोजन एवम् बच्चों का पालन- पोषण नहीं कर पाता है। मजदूरों की समस्याओं को लेकर प्रतिदिन हड़ताल एवम् कारखाने बन्द रहते हैं। डा० लाल की धारणा है कि लागत के अतिरिक्त सम्पूर्ण लाभ में मजदूरों का बराबर हिस्सा है :

कुंतल : --- मैं नहीं समझ पाती तुम प्रेस के कर्मचारियों को

१- पंचपुरुष, पृ०- ११

उनका बोनस क्यों नहीं देते ।[1]

कुंतल : धन और अधिकार की समस्या । एक बार मनुष्य जब धन संग्रह करना शुरू कर देता है, तब वह अपने संग्रह के उद्देश्य को भूल जाता है और तब वह उस धन के नशे में यह भी भूल जाता है कि इस धन का कमाने वाला कौन है ? उसका इसमें कितना हिस्सा है ।[2]

डा० लाल की यह भावना उद्योग के क्षेत्र में एक रचनात्मक कदम है । यदि उद्योगपति स्वेच्छा से मजदूरों का हिस्सा अदा कर दे तो औद्योगिक समाज में व्याप्त हड़ताल एवम् तोड़फोड़ की भावना ही समाप्त हो सकती है । इसके फलस्वरूप समाज को स्वस्थ रखा जा सकता है ।

राजनीति के क्षेत्र में भी डा० लाल की रचनात्मक भूमिका कम रही है । वे शुद्ध प्रजातंत्र सम्मत संस्था की स्थापना में विश्वास रखते हैं । उनके अनुसार " राजा प्रजा का प्रतिनिधि होता है ।" इस कथन को वे स्वयं राजा के मुख से ही स्वीकार कराते हैं ।

राजा : मैं तो कुछ भी नहीं हूं
सब कुछ प्रजा है ।

१- राजरानी, पृ०- ९२

२- -वही- पृ०- १०१

उसने मुझे प्रतिनिधि चुना है ।

हे लो प्रजा है ------ ।"[१]

इस प्रकार की भावना राजनैतिक संस्था को स्वस्थ बनाये रखने के लिए अति आवश्यक है । आधुनिक समाज में इसका प्रत्यक्ष उदाहरण देखा जा सकता है । बलपूर्वक चुनी हुई सरकार को प्रतिक्षण जनता का कोप सहना पड़ता है । धन और अनावश्यक गोष्ठियों के चक्कर में पड़कर समाज का बहुत अहित हो रहा है । डा० लाल के द्वारा दिखाए हुए रास्ते पर चलकर ही समाज का प्रतिनिधि जन कल्याण कर सकता है ।

धर्म के क्षेत्र में डा० लाल की श्रेष्ठ मान्यता यह है कि सभी जीव ईश्वर के समान हैं या जीव ही ईश्वर है । यह अद्वैतवादी सिद्धान्त सभी जीवों में समानता की भावना व्यक्त करता है । डा० लाल समाज में व्याप्त घोर असमानता के प्रबल विरोधी हैं ।

डा० लाल समाज में व्याप्त छुआछूत , जातिवाद एवम् धार्मिक बाह्याडम्बर को समाज का घोर दुश्मन मानते हैं । वे इसे दूर करके जनमानस को स्वस्थ बनाना चाहते हैं । जिस मन्दिर की मूर्ति को एक निम्न वर्ग जन्म देता है, उसी को उस मन्दिर में नहीं घुसने दिया जाता है । डा० लाल ने अधिकारपूर्वक उनके ही मुख से कहलाया है कि उनके

१- सूखा सरोवर, पृ०- ५२

हाथों से अपने मन्दिर पर उनका अधिकार है।

~~अन्ततः ठकुरानी के शब्दों में सर्वजन हित का उपदेश देते हैं।~~

शिक्षण संस्था के क्षेत्र में रचनात्मकता का अभाव सा पाया जाता है। डा० लाल ने प्राचीन समाज में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था की कमियों को विशेष रूप से उजागर किया है। " सुन्दर रस " नामक नाटक इसी कथानक को लेकर अपना विस्तार करता है। प्राचीन काल में शिष्य गुरु के घर जाकर सादे वेशभूषा में रहकर गुरु की सेवा एवम् विद्या ग्रहण करते थे। आजकल के शिष्य वेशभूषा के उपासक, विद्या के उपेक्षक हैं।

इसके अतिरिक्त डा० लाल आधुनिक विद्यार्थी समाज में व्याप्त अनुशासनहीन एवम् गुरु के प्रति अनादर व्यक्त करने की प्रवृत्ति को भी उजागर किया है। वे इन कमियों को प्रदर्शित कर विद्यार्थी समाज की बुराइयों को दूर करना चाहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डा० लाल ने अपने नाटकों में धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शिक्षा संस्थाओं में व्याप्त असंगतियों को प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने इन असंगतियों को दूर करने का मार्ग भी प्रशस्त किया है।

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय- सामाजिक संगठन, विघटन, स्तरीकरण, विवाह, परिवार पारिवारिक विघटन

१- सामाजिक संगठन अथवा विघटन

जीवन गतिशील है, परिवर्तन युक्त है। जहां व्यक्ति के जीवन में समय - समय पर अनेक प्रकार के परिवर्तन आते हैं वहां समाज भी परिवर्तन से अछूता नहीं रह सकता। सृष्टि के प्रारम्भ से ही सभी समाजों में सामाजिक परिवर्तन होते रहे हैं। आधुनिक समय में परिवर्तन की गति काफी बढ़ गयी है। वर्तमान समय में पुरानी सामाजिक व्यवस्था बदल रही है और उसका स्थान ग्रहण करने के लिए नयी-नयी सामाजिक व्यवस्था जन्म ले रही है। इन दोनों ही परिस्थितियों में सामंजस्य की स्थापना समाज के लिए बहुत ही आवश्यक है। जहां पर सुगमता से सामंजस्य स्थापित होता जा रहा है वहां पर सामाजिक व्यवस्था द्रुतगति से विकास की ओर बढ़ रही है। इसके विपरीत असामंजस्य की स्थिति में अनेक सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं और समाज को विघटन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ रहा है।

समाजशास्त्रियों के अनुसार " सामाजिक संगठन समाज व्यवस्था की वह सन्तुलित स्थिति है जिसमें समाज की विभिन्न इकाइयां क्रमबद्ध रूप से एक दूसरे के साथ सम्बन्धित होकर बिना किसी बाधा के अपने मान्य या पूर्वनिर्धारित कार्यों को पूरा कर सके जिसके फलस्वरूप

सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हो सके ।

सामाजिक संगठन के लिए निम्न तत्वों की आवश्यकता होती है :-

(क) ऐकमत्य : समाजशास्त्रियों की धारणा है कि समाज का अस्तित्व तभी तक बना रह सकता है जब वे बहुत से विषयों पर समान मत रखते हों ।

(ख) सामाजिक नियन्त्रण : सामाजिक संगठन को बनाये रखने में सामाजिक नियंत्रण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । इन साधनों में जनरीतियों, रूढ़ियों, कानूनों एवम् संस्थाओं का विशेष महत्व है ।

(ग) सुपरिभाषित सामाजिक संरचना : यदि समाज में विभिन्न व्यक्तियों की परिस्थितियां और भूमिकाएं निश्चित हैं, उनमें सन्तुलन है तो यह कहा जायेगा कि सामाजिक संगठन की स्थिति बनी हुई है ।

सामाजिक संगठन और सामाजिक विघटन सापेक्ष अवधारणाएं हैं जैसे- जैसे समाजों में जटिलता बढ़ती है और सामाजिक परिवर्तन की गति तेज होती है वैसे- वैसे सामाजिक सामंजस्य के अभाव और तनाव अधिकाधिक गहन होते जाते हैं । यदि इनसे छुटकारा प्राप्त किया जाता है तो सामाजिक विघटन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है । सामाजिक संगठन को स्वस्थ और सामाजिक विघटन को रोग के रूप

में चित्रित किया जा सकता है। जब तक शरीर की विभिन्न निर्मायक इकाइयाँ स्वनिर्धारित कार्य करती हैं तब तक शरीर स्वस्थ है, पर जब शरीर का कोई भाग अपना कार्य ठीक तरह से नहीं कर पाता है तो शरीर के अन्दर विकार उत्पन्न होने लगते हैं। कालान्तर में शरीर के निर्मायक भाग शरीर को स्थायित्व प्रदान करने में विफल हो जाते हैं। यह स्थिति विघटन की होती है। यही बात समाज के सम्बन्ध में भी है। विभिन्न समाजों में समय- समय पर सामाजिक संगठन और सामाजिक विघटन की स्थिति देखने को मिलती है। कोई भी समाज न तो पूर्णतः संगठित है, और न ही पूर्णतः विघटित।

समाजशास्त्रियों के अनुसार " सामाजिक विघटन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत समूह अथवा समाज के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध टूटने लगते हैं और उनके व्यवहार को नियंत्रित करने वाले आदर्शों एवम् सामाजिक नियमों का प्रभाव शिथिल होने लगता है। परिणाम-स्वरूप सामाजिक संरचना का स्वरूप बिगड़ जाता है और सामाजिक संगठन को चोट लगती है।"[1]

सामाजिक विघटन के लिए किसी एक कारक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है यह अनेक कारणों के संयुक्त प्रभाव का परिणाम है। आधुनिक समाज में धर्म का महत्व घट रहा है, परिवार

१- समाजशास्त्र, एम०एल० गुप्ता एवं डी०डी० शर्मा, पृ०- ५४०

की संरचना परिवर्तन के मध्य में है, केन्द्रीय या नाभिक परिवार का महत्व भी बढ़ा है, नैतिकता के स्तर में गिरावट आयी है, औद्योगिक क्रांति ने नवीन परिस्थितियों के साथ व्यक्ति के सम्मुख अनुकूलन की समस्या खड़ी कर दी है। ये सब बातें आज के समाज में दिखायी पड़ रही हैं। ऐसी दशा में किसी एक सिद्धान्त अथवा किसी एक कारक के आधार पर सामाजिक विघटन को सही रूप में नहीं समझा जा सकता है। ये मूलत: अनेक कारणों के परिणाम हैं, जिसके उपरान्त आधुनिक समाज अनेक क्षेत्रों में उहापोह की स्थिति में फंसा हुआ है।

(२) सामाजिक स्तरीकरण

सामाजिक स्तरीकरण समाज को उच्च एवम् निम्न वर्गों में विभाजित करने और स्तर निर्माण करने की एक व्यवस्था है। प्रत्येक समाज अपनी जनसंख्या को आय, व्यवसाय, सम्पत्ति, जाति धर्म, शिक्षा, प्रजाति एवम् पदों के आधार पर निम्न एवम् उच्च श्रेणियों में विभाजित करता है। प्रत्येक विभाजन एक परत के समान है और ये सभी परतें जब उच्चता एवम् निम्नता के क्रम में रखी जाती हैं तो सामाजिक स्तरीकरण के नाम से जानी जाती हैं।

स्तरीकरण प्रत्येक समाज में पाया जाता है किन्तु उसके आधार समान नहीं हैं, फिर भी कुछ सामान्य आधारों का उल्लेख किया जा सकता है-

(क) प्राणिशास्त्रीय आधार : लिंग, आयु, प्रजाति, जन्म, शारीरिक व बौद्धिक कुशलता आदि ।

(ख) सामाजिक सांस्कृतिक आधार : व्यवसाय, सम्पत्ति, धर्म ।

(ग) राजनीतिक शक्ति : शासक वर्ग

प्राचीन काल में सामाजिक स्तरीकरण के चार स्वरूप प्राप्त होते थे- दास प्रथा, जागीरें, जाति और सामाजिक वर्ग । पर आधुनिक समय में विशेष रूप से दो स्वरूप प्राप्त होते हैं :

(१) बंदस्तरीकरण (जाति प्रथा)

(२) खुला स्तरीकरण (वर्ग व्यवस्था)

(३) विवाह

मानव ही संस्कृति का धनी है । संस्कृति मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति का एक साधन है । मानव की विभिन्न प्राणिशास्त्रीय आवश्यकताओंमेंयौन सन्तुष्टि एक आधारभूत आवश्यकता है । मानव के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी यौन इच्छाओं की पूर्ति करते हैं लेकिन उनमें केवल इसका दैहिक आधार है । मानव में यौन इच्छाओं की पूर्ति का आधार अंशत: दैहिक, अंशत: सामाजिक एवं सांस्कृतिक है । यौन इच्छाओं की सन्तुष्टि से ही विवाह परिवार

तथा नारेबाजी को जन्म दिया है। परिवार के बाहर भी यौन इच्छाओं की सन्तुष्टि सम्भव है किन्तु समाज ऐसे सम्बन्धों को अनुचित मानता है। अतः विवाह का उद्देश्य यौन-सम्बन्धों की तुष्टि करना है।

विवाह का एक आधार स्त्री में मां एवम् पुरुष में पिता बनने की इच्छा भी है जिसकी पूर्ति वैध रूप में विवाह द्वारा ही सम्भव है। विवाह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की संस्कृति का हस्तान्तरण भी करता है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि विवाह दो विषम लिंगियों को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की सामाजिक, धार्मिक, अथवा कानूनी स्वीकृति है। स्त्री - पुरुषों एवम् बच्चों को विभिन्न सामाजिक व आर्थिक क्रियाओं में सहभागी बनाना सन्तानोत्पत्ति करना, उनका पालन- पोषण, समाजीकरण करना विवाह के प्रमुख कार्य हैं। विवाह के परिणाम स्वरूप माता- पिता एवम् बच्चों के बीच कई अधिकारों एवम् दायित्वों का जन्म होता है।

(४) परिवार : पारिवारिक विघटन

प्राणिशास्त्रीय सम्बन्धों के आधार पर बने हुए समूहों में परिवार सबसे छोटी इकाई है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य रहा है या है। " समाज में परिवार ही अत्यधिक महत्वपूर्ण समूह है।"[१] यह बच्चों के पालन- पोषण आदि कार्य कुशलतापूर्वक

१- समाजशास्त्र, एम०एल०गुप्ता एवं डी०डी०शर्मा, पृ०- ५५४

सम्पन्न करता है। परिवार अपने सदस्यों को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी योग देता है। मनुष्य मरणशील है परन्तु मानव जाति अमर है। मृत्यु और अमृत्यु इन दो विरोधी अवस्थाओं का समन्वय परिवार में ही हुआ है। स्त्री और पुरुष दोनों ही परिवार के मूल है, नदी के दो तटों के समान है, जिनके बीच जीवन रूपी धारा का लगातार प्रवाह हो रहा है। इसका प्रारम्भ मनुष्य जीवन के प्रारम्भ से जुड़ा हुआ है जिसे वह पशु अवस्था से अपने साथ लाया है।

संख्या के आधार पर परिवार के निम्न प्रकार हैं :

(क) केन्द्रीय परिवार या नाभिक परिवार

(ख) संयुक्त परिवार

(ग) विस्तृत परिवार

पारिवारिक सदस्यों के आपसी सम्बन्धों में तनाव, मतैक्य का अभाव, हितों, उद्देश्यों और अभिरुचियों का टकराव और उन्हें एक सूत्र में बांधने वाले सम्बन्धों का टूटना ही पारिवारिक विघटन को जन्म देता है। इसके लिए प्रेरक स्वरूप निम्न लिखित तत्व उत्तरदायी हैं :

(१) सामाजिक मूल्यों के भिन्न- भिन्न होने पर परिवार के सदस्यों में तनाव एवम् संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी है।

(२) समाज में होने वाले परिवर्तन की तीव्रता के कारण

परिवार के सदस्यों की स्थिति में परिवर्तन भी इसको प्रभावित कर रहे हैं।

(३) औद्योगीकरण एवम् नगरीकरण ने संयुक्त परिवार के विघटन में विशेष योग दिया है।

(४) विवाह के आधार में परिवर्तन, धर्म के महत्व में कमी हुई, तथा विवाह को केवल एक समझौता ही माना जा रहा है। इससे परिवार की स्थिति को धक्का पहुंचा है।

(५) आजकल अधिकतर विवाह रोमांस पर आधारित है। साथ ही यौन सम्बन्धों की असन्तुष्टि भी परिवार के महत्व को कम कर रहा है।

(६) बेकारी, नौकरी छूट जाना, दोनों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अन्तर, व्यक्तित्व सम्बन्धी दोष (शराबी, चरित्रहीनता) भी पारिवारिक विघटन को प्रश्रय प्रदान कर रहे हैं।

(७) पारिवारिक तनाव जो वैयक्तिक स्वार्थों के कारण उत्पन्न हो रहा है, बहुत महत्वपूर्ण कारक है।

इस प्रकार परिवार का भविष्य अंधकारमय है। दिन प्रतिदिन यह क्षीण होता जा रहा है। इसके कारण समाज में अनेक प्रकार की कठिनाइयां पैदा हो रही हैं। जो समाज के लिए भी आपत्तिजनक बनी हुई है।

१- सामाजिक संगठन

समाजशास्त्रियों की धारणा है कि सामाजिक सम्बन्धों से बंधकर एक निश्चित भू-भाग पर निवास करता हुआ जन-समुदाय ही समाज है। इस समाज के शरीर निर्माण में मनुष्य मौलिक भूमिका अदा करता है। इसी तरह समाज के उद्भव के विषय में भी यह धारणा प्रचलित है कि मनुष्य के जन्म के साथ ही समाज का भी जन्म हुआ। पुनः जिस प्रकार मनुष्य के गुणों में वृद्धि होती गयी, उसी प्रकार समाज का भी विकास होता गया। प्रतिक्षण हमारा समाज उन्नति कर रहा है। यह नवीन जन समुदाय की धारणा है। इसके अतिरिक्त कुछ वर्ग की यह धारणा है कि वर्तमान समाज उन्नति के बजाय अवनति कर रहा है।

इस निरीक्षणोपरान्त यह प्रतीत होता है कि प्राचीन सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं। यह परिवर्तन इतना द्रुतगामी है कि समाज की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संस्थाएँ स्व को संगठित नहीं कर पा रही हैं। इसके फलस्वरूप संस्थाओं में अनेक प्रकार की विकृतियाँ पैदा हो रही हैं। विशेष रूप से हमारी सांस्कृतिक एवम् आर्थिक संस्थाएँ प्रभावित हुई हैं। हमारे रहन - सहन, खान- पान, वेशभूषा, पारिवारिक सम्बन्ध, वैवाहिक जीवन, दाम्पत्य- सम्बन्ध आदि परिवर्तन के बजाय विघटन की तरफ ही अग्रसित हुए हैं।

डा० लाल के नाटकों में सामाजिक संगठन के स्थान पर विघटन : डा० लाल में संगठन का चित्रण नहीं के बराबर किया है। उनकी रचना के केन्द्र में विघटन का ही अंश विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। नाटक " सबरंग मोहभंग " का एक अंश प्रथमतः प्रस्तुत है। इस अंश से डा० लाल की धारणा का पता चलता है :

> तीसरा युवक : जब से होश संभाला कहीं देखने को नहीं मिला वह कायदा, कहीं नहीं देखा वह चरित्र। घर में आपको झूठ बोलते हुए सुना। हमेशा यही कहते हुए सुना—आपकल चारों ओर भ्रष्टाचार है, लूट है, चोरी है, डाका है, बेइमानी है। स्कूल में अपने टीचरों को कहते सुना। मुझे एक दिन पांच मिनट की देर हो गयी, मुझे क्लास में घुसने नहीं दिया गया। वही अध्यापक २० मिनट लेट आता था क्लास में--- वही टीचर एक दिन (Vice chancellor) बन गया।[१]

सर्वत्र अशांति का रखाव भरा हुआ है :

१- सबरंग मोहभंग, पृ०- ८०

मनीषा : (दो घूंट पीकर) जैसे मेरा कोई पीछा कर

रहा है। कौन है वह ? कौन है ? जहां

से भाग निकली थी कुछ समय पहले फिर वहीं

स्वयं आ गयी हूं। जिस चीज ने कमरा छोड़ने

पर मजबूर किया था वही फिर यहां ले आया।

सोचा था यहां से भागकर निकल जाऊंगी लेकिन

------ बाहर भी जैसे उसी कमरे का विस्तार है।

पूरा शहर जैसे वही कमरा है। झूठ, कायरता,

वासना विस्तार में जाकर अपराध, हिंसा, बलात्कार

बन गये हैं।[1]

इस प्रकार के कथोपकथन से यही प्रतीत होता है कि नाटककार ने युगीन एवं स्वयं समाज का चित्र प्रदर्शित कर दिया है। दिन प्रतिदिन समाज में झूठ, कायरता, लोभ, हत्या, बलात्कार जैसे कुकृत्य हो रहे हैं। साथ ही आर्थिक भोग के साधन, सांस्कृतिक क्रियाकलाप धर्म का प्रभाव सभी अपने महत्व को कम ही कर रहे हैं। उन्नति के लिए विशेष रूप से हत्या, वासना आदि दोष अपनाये जा रहे हैं।

(2) <u>स्तरीकरण : नवीन वर्गों का उदय :</u> स्तरीकरण समाजशास्त्र का

१- करफ्यू, पृ०- ८२

एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। स्तरीकरण का शाब्दिक अर्थ होता है— विभिन्न स्तरों का पाया जाना। प्राचीन भारतीय समाज अनेक स्तरों या भागों में बंटा हुआ था। यह स्तर अपने अन्दर विशिष्ट विशेषताओं को संजोए हुए थे, जैसे- जाति के आधार पर समाज चार स्तरों में विभाजित था- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। इसी प्रकार धर्म, संस्कृति, व्यापार, कुल आदि के आधार पर भी समाज अनेक स्तरों में विभाजित था।

आधुनिक भारतीय समाज में प्राचीन स्तरीकरण के आधार बदल रहे हैं। वर्तमान समय में विशेष रूप से विभिन्न वर्गों का उदय हो रहा है।

आधुनिक समाज में अर्थ का भी आधार मौजूद है। औद्योगीकरण एवम् नगरीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज मुख्य रूप से दो स्तरों में विभाजित हो रहा है। कारखानों में काम करने वाले एवम् नगरों में निवास करने वालों का एक वर्ग बना जा रहा है। इसके अतिरिक्त कृषि का कार्य करने वाले अपनी अलग पहचान बनाए हुए हैं। धर्म राजनीति, शिक्षा के आधार स्वरूप कुछ वर्ग अभी भी अपनी पहचान बनाए हुए हैं।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने स्तरीकरण को स्वीकार करते हुए भारतीय समाज में प्रचलित कुछ आधारों (धर्म, जाति, अर्थ, राजनीति,

शिक्षा) का वर्णन किया है। डा० लाल शुद्ध रूप से भारतीय समाज की उपज हैं। उनके दृश्य में भी भारतीय समाज के दृश्य अंकित हैं। यहां पर प्रचलित धार्मिक, जातिगत, आर्थिक क्रियाओं से वे भलीभांति परिचित हैं।

(क) <u>धर्म के आधार पर :</u> नाटक " पंचपुरुष " में धार्मिक स्तरीकरण के आधार स्वरूप पुजारी है धर्म उपदेष्टा होता है, अन्य व्यक्ति उसके उपदेश को सुनने वाले होते हैं। वही मन्दिर की रक्षा एवम् पूजा करता है।

पुजारी : हे भगवान आज ठाकुर की मूर्ति तोड़ी।

पंचम : हमारे ठाकुर भगवान को कौन ले गया।[१]

(ख) <u>राजनीतिक आधार :</u> राजनीति के आधार स्वरूप भी समाज में विभाजन प्राप्त होते हैं। जनता अपने मत का प्रयोग कर अपना प्रतिनिधि चुनती है। इस प्रकार समाज में दो स्तर जनता एवम् प्रतिनिधि के प्राप्त होते हैं। नाटक " रक्त कमल" में डा० लाल ने इस स्तरीकरण को उल्लिखित किया है :

कमल : इन्द्रजीत क्यों कहते हो ? कहो माननीय इन्द्रजीत त्रिपाठी एम०एल०ए०। और रही मेरे यहां से जाने की बात सो मैं इस समाज से जाऊंगा कहां ? मैं तो

१- पंचपुरुष, पृ०- १५

माई तुम्हीं लोगों के बीच रहूँगा अभी इस जन्म तक नहीं
बल्कि अभी सारे जन्म- जन्मान्तर तक ।[1]

(ग) आर्थिक आधार : औद्योगीकरण के फलस्वरूप समाज में दो वर्गों का उदय हुआ है, प्रथम पूँजीपति द्वितीय श्रमिक। आज के इस युग में विशेष रूप से इस आर्थिक आधार का महत्व बढ़ता ही जा रहा है। अनेक फैक्ट्रियाँ बनती जा रही हैं। इसके परिणामस्वरूप पूँजीपति एवम् श्रमिक संगठनों की संख्या भी बढ़ती जा रही है :

सारंग : मैं तो मालिक आपकी ही इन्डस्ट्री का एक मजदूर
हूँ।[2]

(घ) शिक्षा के आधार पर : शिक्षा के आधार पर भी समाज में दो स्तर प्राप्त होते हैं। प्रथम अध्यापक, द्वितीय शिष्य। नाटक "सुन्दर रस" में प्राचीन शिक्षण संस्था का सुन्दर रूप प्रस्तुत है। पण्डित राज, गुरु जी एवम् उनके दो शिष्य " वैनाथ एवम् शक्तिसिंह, विद्यार्थी जीवन का रूप प्रस्तुत कर रहे हैं।

पंडित राज : (शिष्यों से) तुम लोग बुद्धि एवम् विवेक द्वारा
देवि- माँ को अन्दर ले आओ। सावधान।
यही तुम्हारी परीक्षा है।[3]

१- रक्त कमल, पृ०- ३५
२- -वही- पृ०- ४०
३- सुन्दर रस, पृ०- ३०

(३०) जाति के आधार पर : जाति के आधार पर विभाजित समाज का भी वर्णन प्राप्त होता है। नाटक " कैद से पहले " में जमुना ऐसी जातिगत संस्कारों का रूप प्रस्तुत करती है।

जमुना : नहीं बेटा, ये हमारे यहां का दाना-पानी नहीं खा पी सकते।

सागर : यह क्यों ------।

जमुना : ये ब्राह्मण हैं--- और हम लोग ठाकुर हैं न ---।[१]

इस प्रकार डा० लाल के नाटकों में भारतीय स्तरीकरण के प्रमुख आधार भी मिल जाते हैं। प्राय: उन्होंने यह वर्णन प्राचीन व्यवस्था को दिखाने के लिए ही किया है।

(३१) विवाह : मूलभूत परिवर्तन

" विवाह " यह सांस्कृतिक धरोहर है जो दो पवित्र आत्माओं का मिलन कहलाता है। दो भिन्न - भिन्न स्वयं अनजान आत्माएं मिलकर " एक " हो जाती हैं। कुछ दार्शनिक विचारकों ने तो इसकी उपमा आत्मा एवम् ईश्वर के मिलन से की है। विवाह ही वह आधार है जिसके फलस्वरूप उत्पन्न सन्तान को समाज सम्मान मान्यता प्रदान

१- कैद से पहले, पृ०- २०५

करता है ।

<u>व्यक्तिवादी आधुनिकता : मुक्त यौन सम्बन्ध :</u> डा० लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक काल के जागरूक एवम् व्यक्तिवादी नाटककार हैं । इनके पात्र आधुनिकता के घोर पक्षधर हैं । ये प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अलग ही पताका फहरा रहे हैं । डा० लाल विवाह के क्षेत्र में मूलभूत परिवर्तन के पक्षपाती प्रतीत हो रहे हैं । उनका कथन है कि विवाह दो पवित्र आत्माओं का मिलन है, उसमें किसी का हस्तक्षेप क्यों ? साथ ही डा० लाल मुक्त रूप से विवाह की पुरानी बातों को ही नहीं मानते हैं । वे मुक्त यौन सम्बन्ध स्थापित करने के भी पक्षधर हैं । उनका 'कर्फ्यू' नाटक उनकी इस प्रवृत्ति को पूर्णरूपेण उजागर करता है । वे व्यवस्था को एक सड़ी-गली सामाजिक व्यवस्था की संज्ञा प्रदान करते हैं । 'कर्फ्यू' की मुख्य पात्र मीना खुलेआम चुनौती देती है:

> "क्यों इतना डरता है आदमी एक दूसरे से ? क्यों हर समय उसे ऐसे खोल की आवश्यकता होती है अपने को ढकने के लिए जो सिर्फ देखने में मजबूत लगता हो क्यों नहीं वो अपना 'इन्हीबिशन्स' तोड़कर बाहर आ जाता है ? कारण क्या हमारी सड़ी-गली सामाजिक व्यवस्था नहीं है ।"[1]

१- कर्फ्यू, पृ०- २६

<u>नारी मानसिकता में विस्फोट :</u> डा० लक्ष्मी नारायण लाल ने यह कथन एक नारी पात्र के मुख से कहलाया है। इसके पीछे भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक बहुत बड़ी भूल छिपी हुई है। अनादि काल से दबी हुई नारी मानसिकता वर्तमान समय में विस्फोट कर चुकी है। अब वह पुरुषों के द्वारा बनाये हुए कानूनों को अक्षरशः पालन नहीं कर सकती। अब विवाह- बन्धन उसके लिए व्यर्थ ही साबित हो रहा है। आर्थिक रूप से गुलाम नारी अब स्वयं ही आर्थिक उत्पादन के क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है। डा० लक्ष्मी नारायण लाल ने भी उनकी इस भावना को सम्मान दिया है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र नारी विवाह सम्पन्न करने में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हो गयी है। इसके परिणाम- स्वरूप मातृ- पितृ पक्ष का प्रभाव कम होता जा रहा है। करफ्यू में इस तथ्य को देखा जा सकता है :

युवती : मेरी ओर देखो------ नहीं देखोगे ? अच्छा मेरी बात सुनो---- आज फैसला करके आयी हूं ---- तुम्ही से ब्याह करुंगी।

युवक : नहीं, तू इस कदर मुझे बर्बाद नहीं कर सकती मेरे संग जाना ही होगा।[1]

१- करफ्यू, पृ०- ५८

संक्षिप्त विवाह संस्कार : अथवा दोस्ती : डा० लक्ष्मीनारायण लाल " विवाह " जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रम को बहुत ही सीमित रूप से सम्पन्न करवा देते हैं। इसके अन्दर माता - पिता की अस्वीकृति के अतिरिक्त बारात या अन्य किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम की आवश्यकता नहीं समझा गई है। डा० लाल ने केवल लड़के - लड़की का प्रेम मिलन एवम् तत्पश्चात जीवन साथी बनने की प्रतिज्ञा जैसे मूल मन्त्र से ही विवाह को सम्पन्न करवा दिया है। साथ ही पति- पत्नी शब्द को हटाकर दोनों को दोस्त बनाने के पक्ष में है। डा० लाल दोनों को बराबर के स्तर पर खड़ा करना चाहते हैं :

> मैं : लोग शादी करके स्त्री को धर्मपत्नी बना लेते हैं, मैं कहता हूं कि उसे दोस्त क्यूं नहीं बनाते।[१]

डा० लाल उस सुबह के इन्तजार में हैं जब प्रत्येक नारी स्वइच्छा से अपने (पति) दोस्त के साथ दोस्ती के बन्धन में बंध जायेगी। वह सुबह बहुत ही सुखदायी होगी।

सन्तान : अवैध अनाम प्रेमपूर्ण सम्बन्धों का परिणाम : डा० लाल एक आधुनिक युग का निर्माण करना चाहते हैं। भारतीय संस्कृति इस बात की प्रत्यक्ष गवाह है कि उस सन्तान को ही समाज में सम्मान प्राप्त होता है जो विवाह के उपरान्त पैदा होता है। पर डा० लाल

१- व्यक्तिगत, पृ०- १६

उस सन्तान को भी सम्मान प्रदान किये हैं जो प्रेमपूर्ण सम्बन्धों के उपरान्त पैदा हो जाते हैं। डा० लाल उस जीव को भी सम्मान जीने का अधिकार प्रदान किये हैं। डा० लाल " विवाह " के कुछ मंत्रों को ही पूर्ण न समझकर दो आत्माओं की स्वीकृति को ही महत्वपूर्ण समझते हैं। उनके अनुसार माता- पिता को भी अपनी स्वीकृति की मुहर वहीं लगाना चाहिए जहां लड़के लड़की की स्वीकृति हो। "पर्वत के पीछे, " सुबह होगी " आदि नाटक इस तथ्य के प्रत्यक्ष गवाह हैं। " राजीव " अपनी बेटी की सन्तान को अपनी बेटी की " आत्मा" मानते हैं जो विवाह के पूर्व ही पैदा हो जाती है।

राजीव : (लड़खड़ाता हुआ) मेरी बेटी -- मेरी बेटी भी जिन्दा है डाक्टर। यह नन्हा सा जिन्दा इन्सान मुझे रोशनी देगा और उसकी मां- मेरी बेटी की आवाज इन पहाड़ियों में गूंजती रहेगी ---- और हम दोनों उसे ढूंढते रहेंगे और ढूंढ लेंगे।[1]

इसी तरह " सुबह होगी " नामक नाटक में डा० लाल ने उस सन्तान को भी जित रखने का प्रयास कर रहे हैं जो झाड़ी में फेंकी हुई थी :

लड़की : कुछ नहीं ---- तुम चाहते हुए भी मेरी मदद नहीं कर सकते ---- ।

१- पर्वत के पीछे, पृ०- ६०

आनन्द : कर सकता हूं --- (भागता हुआ) यह बच्ची मुझे दो --- मैं इसे खिलाऊंगा --- अपनी पलकों में पालूंगा और देख लेना तुम्हारे सारे सपने एक दिन तुम्हारी इस बच्ची में सच निकलेंगे --- तुम्हें वह सुबह देखकर खुशी होगी जब तुम्हारी यह नन्हीं दुल्हन बनकर मेरे घर के मण्डप से अपने पति के घर जायेगी ।[१]

इस निर्माण को अवश्य ही भारतीय समाज को स्वीकार करना पड़ेगा । दिन-प्रतिदिन ऐसी परिस्थितियां पैदा होती जा रही हैं । आज विवाह का संक्षिप्त संस्कार (जयमाला द्वारा) इस निर्माण की प्रथम सीढ़ी है ।

नवीन विवाह दृष्टि : इस तथ्य को स्वीकार किया जा रहा है कि विवाह जैसी संस्था अपनी कुरीतियों के कारण पतन के करीब है । ब्राह्मण वर्ग इसे भ्रष्ट करने में सबसे ज्यादा उत्तरदायी है । इसके बाद माता - पिता का स्थान आता है । अब माता-पिता को विवाह की लगाम स्वयं लड़के लड़कियों के हाथ में सौंप देनी चाहिए । आर्थिक रूप से सम्पन्न लड़के - लड़कियां इस छोटी-सी जिम्मेदारी को पूर्ण कर सकती हैं । इसके अतिरिक्त आधुनिक जीवन में बढ़ती आवश्यकताओं के

१- सुबह होगी, पृ०- ८६

कारण केवल पुरुष वर्ग ही इसे पूरा नहीं कर सकता। साथ ही औद्योगीकरण, नगरीकरण, मशीनीकरण एवम् उदारवादी युग के कारण नारी अब केवल घर की चहारदीवारी में बैठी नहीं रह सकती है। उसे अब पति का दोस्त की हैसियत से सहायता करनी चाहिए। साथ ही पति महोदय को अपने अहं को त्यागकर सहयोग प्राप्त करना चाहिए। यह मेरा, डा० लाल और सम्पूर्ण प्रगतिशील जीवन का निर्णय है :

कविता : स्त्री घर में रहती है।

गौतम : दुनिया उससे बाहर है।

कविता : उसकी दुनिया यही है।

गौतम : किसने कहा ?

कविता : किसी ने नहीं ---- ।

गौतम : तुम्हें अब मैंने रोका ।[1]

(4) परिवार : नवनिर्माण

प्राणिशास्त्रीय सम्बन्धों के आधार पर बने हुए समूहों में परिवार सबसे छोटी इकाई है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य रहा है। समाज में परिवार अत्यधिक महत्वपूर्ण समूह है। परिवार का निर्माण पति- पत्नी के सहयोग से होता है। इसका निर्माण मुख्यतः बच्चों के पालन - पोषण एवम् यौन संतुष्टि के लिए

१- करफ्यू, पृ०- ६६

किया जाता है। साथ ही परिवार सामाजिक नियंत्रण का बहुत ही उत्तम साधन है। परिवार के माध्यम से उत्तराधिकार का निर्धारण भी सम्भव हो जाता है।

<u>पति- पत्नी का द्वन्द्व :</u> डा० लक्ष्मीनारायण लाल एक सजग एवम् जागरूक नाटककार हैं। उनका व्यक्तित्व इन प्रवृत्तियों से अछूता नहीं है। उन्होंने परिवार के नव-निर्माण की दिशा में समाज को अप्रतिम सहयोग प्रदान किया है। इसका साक्षात प्रमाण इनके प्रयोगशील नाटक हैं। इन्होंने अपने नाटक में परिवार की धुरी (पति- पत्नी) के विषय में बहुत ही गहरा आदर्श उपस्थित किया है। इस आदर्श में परिवर्तन की दिशा स्पष्ट ही व्यक्त होती है। पति- पत्नी के बीच बढ़ता हुआ द्वन्द्व इनके नाटक का प्रमुख आधार है। इन सम्बन्धों के ऊपर औद्योगीकरण + मशीनीकरण के परिणाम का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। साथ ही असन्तुष्ट यौन सम्बन्ध भी उपस्थित है :

मनीषा : मुझे चाहते हो।

गौतम : चुपचाप साथ घूमता जा रहा है।

मनीषा : मुझे प्यार करो।

गौतम : अब तक कितने लोगों से।

मनीषा : सबसे

गौतम : मतलब ?

मनीषा : शरीर सम्बन्ध

गौतम : हाँ

मनीषा : शादीशुदा क्या दूसरी स्त्री से प्यार नहीं
        कर सकता ?

गौतम : पत्नी से छिपकर[1]

यही कथन " व्यक्तिगत " नाटक में भी देखा जा सकता है।
" वह " में की पत्नी अचानक किसी घर में पड़े अकेले बच्चे का टेलीफोन
प्राप्त करती है। तभी " मैं " आ जाता है। यहाँ पर " वह "
में की पत्नी है।

मैं : कौन था ?

वह : क्या ---- था

मैं : कौन था जिससे रोमांच कर रही थी ?[2]

इस प्रकार का अविश्वास एवम् द्वन्द्व का वातावरण परिवार
के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। आजकल इसी कारण अनेक बने-बनाये
परिवार [illegible]
टूटते जा रहे हैं। डा० लाल भी परिवार की इस दयनीय दशा से
विशेष रूप से प्रभावित हैं। इस अविश्वास के वातावरण में नारी

१- कर्फ्यू, पृ०- ४१
२- वही - पृ०- ३५

जगत ही अनेक प्रकार से प्रताड़ित की जा रही है।

<u>माता-पिता की भूमिका :</u> इसी प्रकार परिवार में माता-पिता की सर्वोच्च भूमिका में ह्रास हुआ है। नाटक " दर्पण " में "हरिपद्म" पिता की बातों को अनुचित सिद्ध करते हुए आधुनिकता का परिचय दे रहे हैं।

पिताजी : जिस लड़की के कुलशील का पता नहीं उससे तुम अपना ब्याह करना चाहते हो ?

हरिपद्म : इसमें समस्या क्या है ? आप किसी के बाहर के परिचय को ही महत्व प्रदान करते हैं।[1]

इसी प्रकार का उदाहरण नाटक " अब्दुल्ला दीवाना " में भी देखा जा सकता है। दिन- प्रतिदिन समाज में फैले पिता-पुत्र की टकराहट के समान ही यह कथन है। पिता- पुत्र को डांटता है, प्रत्युत्तर में पुत्र भी वही शब्द दुहराता है। आजकल पुत्र पिता की आज्ञाओं का स्पष्ट रूप से उल्लंघन कर रहा है।

युवक : कहता हूं यह मुकदमा बन्द कीजिए।

स्त्री : बेटे ऐसा नहीं बोलते।

युवक : हां भाई डियर मम्मी - अच्छा बेटे लोग हरिकीर्तन करते हैं--- हरे कृष्णा हरे राम।

१- दर्पण, पृ०- २३

पुरुष : धनी खबरदार

युवक : ऊँची खबरदार[1]

<u>नारी प्रताड़ना :</u> भारतीय समाज में नारी वर्ग सदियों से अनेक प्रकार के कष्ट सहती आ रही है। कभी उसे समाज के उलाहने सुनने पड़ते हैं, तो कभी घर में ही पति के द्वारा दण्ड प्राप्त करती है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी नारी प्रताड़ना का सटीक एवम् व्यावहारिक चित्र प्रस्तुत किया है। अंधाकुआं में "सुकिया" और "लंकाकाण्ड" में "गौरा" नामक स्त्री पात्र इसके साक्षात प्रमाण हैं। इस प्रकार आधुनिक परिवेश में परिवार की दशा दयनीय हो गयी है।

नन्दो : आज पता चला है कि नमक तेल का क्या भाव है।
(रुककर) कुएं में कूदने गयी थी ।---।[2]

यह सब डा० लाल ने नारी मस्तिष्क को उत्तेजित करने के लिए प्रस्तुत किया है। आधुनिक नारी कुछ समयोपरान्त अवश्य ही स्वावलम्बी बनकर पुरुष के अहंकार को अवश्य ही चोट पहुंचायेगी। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण लंकाकाण्ड में देखा जा सकता है।

गौरा : लेकिन एक बार स्वीकार कर लेने के बाद न जाने
कितनी गुलामियां शुरू हो जाती हैं, मैं गुलाम नहीं

१- अब्दुल्ला दिवाना, पृ०-६४

२- अंधा कुआं, पृ०- ६४

> रह सकती । मैं खुद नया जन्म ले रही हूं । मैं भाग नहीं
> रही हूं मैं जा रही हूं ।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि डा० लाल नारी की गुलामी को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं । वे उसे आजाद करने के पक्ष में हैं । उनका कहना है कि यदि एक बार नारी गुलामी की जिन्दगी जीती है तो वह क्रमशः बढ़ती ही जायेगी । डा० लाल परिवार में पत्नी के सम्मान के पक्षधर हैं । उनका विचार है कि सन्तुलित परिवार ही अत्यधिक समय तक टिका रह सकता है । इसके अतिरिक्त परिवार में बच्चों के बढ़ते हुए अमर्यादित व्यवहार के प्रति चिन्तित प्रतीत होते हैं । डा० लाल पुरुष वर्ग के अहंभाव के प्रबल विरोधी हैं । उन्होंने पुरुषों को अपने अन्दर सुधार के लिए अनेक आधार प्रदान किये हैं । आधुनिक काल में नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता को देखकर पुरुष को स्वयं का सुधार करने के लिए प्रेरित होना चाहिए । अन्यथा दोनों वर्ग प्रतिशोध की आग में जलने लगेंगे । आधुनिक काल में पुरुष वर्ग की यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि वह नारी वर्ग को बराबर स्वीकार करने के उपरान्त भी कुछ धन के कारण अग्नि को समर्पित कर दे रहा है । यदि समाज का सन्तुलन बिगड़ जायेगा तो चारों तरफ हिंसा और बलात्कार का तांडव नृत्य देखने को मिलेगा । क्या पुरुष वर्ग यही चाहता है ?

१- लंकाकाण्ड, पृ०- ३५

डा० लाल के नाटकों का इस दिशा में रचनात्मक योगदान

डा० लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक साहित्य जगत के यशस्वी एवम् अनुभवी साहित्यकार हैं। अपने साहित्य जगत में वे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से समाज को संगठित करने में प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। कभी - कभी किसी पक्ष विशेष की बुराइयों को दिखाकर उनके दोषों को दूर करना चाहते हैं। कभी-कभी समाज को किसी कल्याणकारी मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार डा० लाल के नाटकों का निषेधात्मक एवम् रचनात्मक पक्ष जन-मानस के लिए प्रेरणात्मक है।

समाज के गठन के विषय में डा० लाल का विचार बहुत ही उदार है। वे मार्गों - उपविमार्गों को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं दिखाई पड़ते हैं। धार्मिक- आर्थिक, राजनीतिक, जन्मजात आदि के आधार पर हुए समाज के बटवारे को अस्वीकार करते हुए कह उठते हैं-

बाबा : यह पूरी जमीन, खेत, बाग-बगीचे, पोखर, कुआं, गांव की यह सारी धरती पूरे गांव की थी। पूरा गांव एक परिवार था- एक समुदाय था। जन्म के आधार पर जाति नहीं थी। ---।[१]

ठकुरानी : केवल इतना समझती हूं- आकाश के नीचे जिस पृथ्वी पर चांद और सूरज के प्रकाश में हम सब

१- पंचपुरुष,पृ०-१२

समान रूप से बड़े हैं, यह साबित करता है, हम सब एक
से समान हैं।[1]

डा० लाल के अनुसार आकाश के नीचे जो यह विराट भू-मण्डल दिखाई पड़ रहा है वह सम्पूर्ण एक है। मानव वर्ग अपनी स्वार्थ एवम् अधिकार लिप्सा के वशीभूत होकर इसे खण्डों में विभक्त कर रहा है। डा० लाल की यह महान भावना जीवों की रचना तक प्रसारित है। उनके अनुसार सम्पूर्ण जीव उस ईश्वर का ही अंश है। वे ईश्वर और जीव में अभेद सम्बन्ध स्थापित करते हुए धार्मिक स्तर पर भी समाज को "एक" रखने में प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं।

कण्ठी : दर्पण में ही मैंने उस ईश्वर का साक्षात्कार किया है।

पिता जी : ईश्वर का साक्षात्कार ?

कण्ठी : यह संसार क्या है, उस ईश्वर का ही तो दर्पण है इसमें जो चाहे, जब चाहे, अपना दर्शन पा सकता है।[2]

समाज के विषय में डा० लाल की यह रचनात्मक प्रवृत्ति पूजनीय है। साथ ही वे समाज में व्याप्त राजनैतिक अस्थिरता से भी अधिक चिन्तित प्रतीत होते हैं। राजनैतिक संस्थाओं के संगठन में

१- पंचपुरुष,पृ०- ६१

२- दर्पण, पृ०- ६२

प्रजा को विशेष महत्व प्रदान करते हैं। उनके अनुसार उसी "राजा" को राज्य करने का अधिकार है जिसे प्रजा चाहती है।

राजा : मैं तो कुछ भी नहीं हूं
सब कुछ प्रजा है।
उसने मुझे केवल प्रतिनिधि चुना है
वे ही प्रजा से ------।[१]

डा० लाल समाज को स्थिर एवम् स्वस्थ बनाने के लिए जीवों को समानता एवम् निरपेक्ष प्रजातंत्रात्मक प्रणाली को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते हैं। समाज के विकास में उनकी यह रचनात्मक प्रवृत्ति जन कल्याणकारी प्रतीत हो रही है।

परिवार : "विवाह" दो पवित्र आत्माओं का मिलन है। विवाह के उपरान्त पत्नी पति की सहचरी बन करके रह जाती है। समाज में उसका अस्तित्व पति से जुड़ा हुआ है। पति से अलग पत्नी का अस्तित्व भारतीय समाज में नहीं के बराबर ही रक्खा गया है। भारतीय संस्कृति के अनुसार पत्नी पति के कार्य में सहयोग ही कर सकती है, उसकी निर्णायक भूमिका नहीं के बराबर है।

आधुनिक काल में पत्नी केवल पति की सहचरी मात्र ही नहीं रह गयी है वह निर्णायक भूमिका लेने में भी समर्थ हो रही है। साथ

१- मुझा सरोवर, पृ०- ५२

ही वह पुरुषों के समान प्रत्येक क्षेत्र में बराबर की भूमिका का निर्वाह कर रही है। कारखाने में कार्य करने के साथ-साथ वह गृहस्थी का कार्य भी कर रही है।

लतिका : जल्दी - जल्दी कपड़े तह करो आज ही माल
भेजना है कम्पनी को।[1]

डा० लाल भी इस नवीन भावना के समर्थक हैं। वे पत्नी को घर की चारदीवारी के अन्दर कैद रखने के घोर विरोधी हैं। वे इस चारदीवारी को "करफ्यू" की संज्ञा प्रदान करते हैं। साथ ही वे स्त्री जगत को इस करफ्यू को तोड़ने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

कविता : स्त्री घर में रहती है।

गौतम : दुनिया उसके बाहर है।

कविता : उसकी दुनियां यही है।

गौतम : किसने कहा ?

कविता : किसी ने नहीं यही उसका स्वभाव है।

गौतम : तुम्हें कब मैंने रोका।[2]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल विवाह के उपरान्त स्थापित दाम्पत्य सम्बन्ध को नीरस एवं कुंठाओं से भरा हुआ पाते हैं। यही वास्तविकता

१- लंका काण्ड, पृ०- ४५

२- करफ्यू, पृ०- ६६

आज भारतीय समाज को दीमक की तरह खाये जा रही है। दाम्पत्य जीवन की निराशा का समाधान आदर्शवादिता को त्यागना ही है। उनके शब्दों में इस आदर्श का सम्पूर्ण झूठ है।

कविता : आदर्श पति आदर्श पत्नी

गौतम : यह विश्वास जरूरी है।

कविता : यह झूठ है।[1]

पुनः वे इन सम्बन्धों को सार्थकता से हटाकर निरर्थकता की ओर बढ़ाने को प्रेरित कर रहे हैं। डा० लाल के अनुसार पति- पत्नी को अपनी - अपनी भूमिका का स्वयं ही निर्वाह करना चाहिए। साथ ही वे विवाह के उपरान्त स्थापित सम्बन्ध को नया अर्थ प्रदान करते हैं:

मैं : लोग शादी करके स्त्री को धर्मपत्नी बना लेते हैं मैं कहता हूं उसे दोस्त क्यूं नहीं बना लेते ?[2]

<u>विवाह :</u> डा० लक्ष्मीनारायण लाल " विवाह " को सम्पन्न कराने के आधार स्वरूप अच्छे खानदान, उच्चजाति, धर्म आदि सभी को अस्वीकार करते हैं। उन्होंने केवल प्रेम को ही महत्व प्रदान किया है। प्रेम ही इसका सर्वोत्कृष्ट आधार है :

मैं : शादी को लोगों ने खेल तमाशा बना रखा है। शादी

१- करफ्यू, पृ०- ८४

२- व्यक्तिगत, पृ०- २१

एक निजी व्यक्तिगत चीज है ------ दो आत्माओं का
मिलन है- जिनकी बुनियाद है प्रेम । ऐसा प्रेम जहां है
पति- पत्नी में निरन्तर एक ग्रोथ हो---- विकास ।
यही विकास तो समाज का विकास है ।[१]

इसके अतिरिक्त डा० लाल ने विवाह को सम्पन्न कराने में
माता- पिता की भूमिका को बिलकुल त्याज्य समझा है । इनके
अनुसार लड़के - लड़कियों को स्वेच्छा स्वम् स्वविवेक के अनुसार इस शुभ
कार्य को सम्पन्न करना चाहिए । इसी में समाज की भलाई छिपी हुई
है । डा० लाल भारतीय समाज की समता के लिए दोनों वर्ग की
स्वतन्त्रता के हिमायती प्रतीत होते हैं ।

युवती : पिता की तय की हुई शादी मंजूर कर ली ।
युवक : क्या------ यह क्यों किया तूने ?
युवती : तुम्हारी बात समझ कर मान ली ।
युवक : नहीं तू इस तरह मुझे बर्बाद नहीं कर सकती ।
मेरे को जाना ही होगा ।[२]

इस निश्चय के उपरान्त वे अपने लक्ष्य में सफल से प्रतीत होते हैं ।
नाटक " तोता- मैना " में इसी आधार पर आगे बढ़ते हुए इस शुभ

१- व्यक्तिगत, पृ०- १६
२- करफ्यू, पृ०- ५८

कार्य को सम्पन्न करवा देते हैं :

कंस : तो आओ अपने - अपने हाथ मुझे दो ।

(कंस तोता मैना के हाथ मिला देता है)

कंस : (तुम दोनों की शादी

तोता : (प्रसन्नता से उठकर) शादी ।

(मैना सलज्जा)[1]

इसी प्रकार की भावना डा० लाल के " रातरानी " नामक नाटक में भी पायी जाती है। इसमें डा० लाल ने सुन्दरम् से निरंजन बाबू का ब्याह करके उच्च आदर्श प्रदर्शित किया है।

माली : मां---- मां इंदी - इंदी में यह क्या हो गया ?

कुंतल : ब्याह

माली : सुन्दरम से निरंजन बाबू का ब्याह ।

इस पर कौन एतबार करेगा मां ?

कुंतल : मेरा मन ।[2]

नाटककार ने इस प्रेम बन्धन को सहज सरल रूप प्रदान किया है। यह उनकी महान् प्रतिभा एवम् सरल व्यक्तित्व की देन है।

मुक्त यौन सम्बन्ध का समर्थन : डा० लाल पति- पत्नी के बीच व्याप्त

१- तोता-मैना, पृ०- ७२

२- रातरानी, पृ०- ८२

यौन सम्बन्धों को लेकर चिन्तित प्रतीत होते हैं। भारतीय समाज में सन्देह की भावना दाम्पत्य जीवन को खाये जा रही है। पत्नी के लिए ईश्वर तुल्य पति की स्थिति एवम् पति के लिए पत्नी का पवित्र सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा है। यह विभेद की खाई दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

मीनाक्षा : मुझे प्यार करो।

गौतम : अब तक कितने लोगों से

मीनाक्षा : सबसे

गौतम : मतलब ---- ?

मीनाक्षा : शरीर सम्बन्ध---- ?

गौतम : हां

मीनाक्षा : अगर कहूं किसी से नहीं। विश्वास नहीं होता ?

गौतम : (सिर हिलाता है)[१]

आधुनिक समाज में अनेक शरीर सम्बन्ध स्थापित करना एक फैशन सा बनता जा रहा है। या भारतीय समाज आधुनिकता के चक्कर में किसी भी रास्ते पर चलने को मजबूर सा होता जा रहा है।

गौतम मीनाक्षा के साथ शरीर सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था, परन्तु मीनाक्षा डर करके भाग जाती है। मीनाक्षा को बाहर भी

१- कर्फ्यू, पृ०- ४०- ४१

इसी का सामना करना पड़ता है। पुलिस उसे थाने ले जाती है और एक साथ कई लोग उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। पुनः वह गौतम के पास आती है। गौतम उससे क्षमा मांगता है। भारतीय समाज की इस सतही तथाकथित आधुनिकता को डा० लाल ने उद्घाटित किया है।

गौतम : मैं शर्मिन्दा हूं। इसलिए नहीं कि मैंने तुम्हारे साथ सोना चाहा------ । इसलिए कि तुम्हारे विश्वास को ठेस पहुंचाई मैंने यह सब करके।

मनीषा : मेरे विश्वास को ठेस नहीं पहुंची वह और पक्का हुआ। मुझे लगता है परिवर्तन अब अनिवार्य है यदि हम जीना चाहते हैं------ । तुमने ऐसा पहले कभी नहीं किया आज किया--- यानी जिस तरह का जीवन तुम जी रहे हो उससे तुम भागना चाहते हो।

गौतम : शायद तुम ठीक कह रही हो।

मनीषा : लेकिन जल्दी में गलत रास्ते पर भाग पड़े। ऐसे अकेले तुम नहीं हो। हम सब गलत रास्तों पर भागने वालों में हैं। क्योंकि सही रास्ता हमें नहीं मालूम हम समझते रहे हैं, कुछ भी

नया, कुछ भी अनोखा, कुछ भी अजीब करके हम जीवन को बदल सकते हैं। समाज को बदल सकते हैं लेकिन यह बदलना तो केवल सतही है कुछ देर के लिए ---।[१]

इन सतही `नवीनताओं` की सोच भारतीय समाज को गलत रास्ते पर ले जा रही है, जैसा कि नायिका मीना कहती है।

इस प्रकार डा० लाल ने विवाह, परिवार, समाज के क्षेत्र में नवीन एवम् उत्तम तरीके लेते हैं। निष्कर्षत: डा० लाल विवाह के क्षेत्र में लड़के लड़कियों की स्वतन्त्र भूमिका, पति- पत्नी शब्द को समाप्त कर दोस्त की भावना विकसित करना, धर्म, वर्ग, जाति के आधार पर समाज के विभाजन का खण्डन करते हैं। यह भावना समाज को स्वस्थ कर सकती है।

१- करफ्यू, पृ०- ८३

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय— सामाजिक प्रतिमान (Social Norms)

सामाजिक प्रतिमान को सामाजिक मानदण्ड अथवा सामाजिक आदर्श नियम भी कहते हैं। सामाजिक प्रतिमानों के आधार पर ही हम किसी मानवीय व्यवहार को उचित या अनुचित ठहरा सकते हैं। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज द्वारा स्वीकृत तरीकों को अपनाता है। इन्हें ही हम सामाजिक प्रतिमान कहते हैं। सामाजिक प्रतिमानों के अभाव में सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। सामाजिक जीवन को व्यवस्थित बनाए रखने के लिए ही मानव अनेक प्रथाओं, रीति-रिवाजों, परिपाटियों, रूढ़ियों एवम् कानूनों आदि की रचना करता है। जिन्हें हम सामाजिक प्रतिमान कहते हैं। इसी बात की ओर संकेत करते हुए " बीरस्टीड " लिखते हैं- " बिना प्रतिमानों के सामाजिक जीवन असम्भव होगा और समाज में कोई व्यवस्था नहीं रह पायेगी।[1] प्रो० डेविस ने भी लिखा है- " आदर्श नियमों के अभाव में मानव समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती।"[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक प्रतिमान समाज में व्यवहार करने के निश्चित एवम् प्रमाणित तरीके हैं जो समाज

१- आर०बीरस्टीड, पृ०- १३३, औ० पी० सी० आर० टी०

२- किंग्सले डेविस, मानव समाज, पृ०- ४३ - ४४

द्वारा स्वीकृत है और हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विद्यमान है। खाने- पीने, उठने- बैठने, बोलने, नृत्य करने, स्वागत करने आदि से सम्बन्धित सामाजिक प्रतिमान पाये जाते हैं। इनके पालन करने से हम पुरस्कृत होते हैं, विपरीत आचरण करने पर निन्दा के पात्र। ये हमारे व्यवहार को नियंत्रित करते हैं, सामाजिक सम्बन्धों को नियमित करते हैं, एवम् समाज व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करते हैं। आर० बीरस्टीड ने सभी प्रकार के प्रतिमानों को तीन श्रेणियों में बांटा है : (१) जनरीतियां, (२) रूढ़ियां, (३) कानून।[1]

प्रो० किंग्सले डेविस ने सामाजिक प्रतिमानों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है : जनरीतियां, रूढ़ियां, प्रथा, नैतिकता और धर्म, कानून।[2]

१- <u>सामाजिक परम्परा : जनरीतियां :</u> जनरीतियाँ अपेक्षाकृत स्थायी व्यवहार है। इनका पालन मनुष्य अचेतन रूप से करता है। इनका विकास स्वत: एवम् मानव अनुभवों के आधार पर होता है। जनरीतियां मानव की किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति अवश्य करती है अत: आवश्यकताओं में परिवर्तन होने पर इनमें भी परिवर्तन होता रहता है। उदाहरण- अभिवादन, भोजन, वस्त्र पहनने की

१- आर० बीरस्टीड, पृ०- १३३ - १३४, ओ० पी० सी० आर० टी०

२- किंग्सले डेविस, मानव समाज, पृ०- ४७

जनरीतियां जो वैदिक युगों में थी वे आज नहीं है। एक समाज की जनरीतियां प्राय: दूसरे समाज की जनरीतियों से भिन्न होती है। इनका पालन कराने के लिए औपचारिक संगठन नहीं होते है वरन् अनौपचारिक संगठनों हंसी, मजाक, व्यंग्य, आलोचना आदि की शक्ति इनके पीछे होती है। इसलिए प्रत्येक समाज की अपनी जनरीतियां होती है, अत: उससे सम्बन्धित दण्ड व्यवस्था भी उसी समूह तक होती है। उदाहरण के लिए गांवों में पति- पत्नी हाथ में हाथ डाले चल नहीं सकते। यदि कोई विदेशी ऐसा करता है और गांव वाले आलोचना भी करते हैं तो उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

२- रूढ़ियां : रूढ़ियों से तात्पर्य ऐसी लोकप्रिय रीतियों और परम्पराओं से है जिसमें जनता के इस निर्णय का समावेश हो चुका है कि वे सामाजिक कल्याण में सहायक हैं और ये व्यक्ति पर यह दबाव डालती है कि वह अपना व्यवहार उनके अनुकूल रखे। यद्यपि कोई सत्ता उसे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं करती। ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। जब कोई जनरीति समाज में लम्बे समय से प्रचलित हो, जिसे समूह के लिए आवश्यक माना जाता हो तो वह रूढ़ि का रूप धारण कर लेती है। उदाहरण के लिए एक विवाह की प्रथा, सती प्रथा, बालविवाह की प्रथा, विधवा विवाह निषेध, सम्पत्ति उत्तराधिकार का नियम पत्नी का पति के प्रति वफादार

होना आदि। ये एक समय में समूह के हित में थे। अब समय सती प्रथा, बालविवाह का पालन समूह के हित के लिए घातक समझा जा रहा है।

रूढ़ियों का विकास स्वतः होता है। लोकाचार अनुदार या रूढ़िवादी प्रवृत्ति के होते हैं। रूढ़ियों में नैतिकता का अंश पाया जाता है अतः इनका पालन धार्मिक कर्तव्य के रूप में समझा जाता है। इनका प्रभाव कानून से अधिक होता है। मनुष्य न्यायालय की निगाह से बचकर कानून की अवहेलना कर सकता है पर समाज की अवहेलना कर रूढ़ियों का उल्लंघन करना कठिन है।

३- <u>प्रथा :</u> प्रथाएं भी अनौपचारिक सामाजिक प्रतिमान हैं। प्रथा शब्द का प्रयोग ऐसी जनरीतियों के लिए होता है जो समाज में बहुत समय से प्रचलित हों। प्रथा में भी समूह कल्याण के भाव निहित होते हैं। ये पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते हैं। ये नवीनता की विरोधी होती है।

प्रो० डेविस के अनुसार- " प्रथा शब्द विशेषकर उन व्यवहारों की ओर संकेत करता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी होते चले आये हैं।" [1]

मैकाइवर एवम् पेज के अनुसार- " सामाजिक मान्यता प्राप्त व्यवहार ही समाज की प्रथाएं हैं।" [2]

१- किंग्सले डेविस, मानव समाज, पृ०- ४१

२- मैकाइवर तथा पेज, मानव समाज, पृ०- २०

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते हैं कि प्रथा समाज में व्यवहार करने की विधि है। इसको समाज में पूर्ण स्वीकृति प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए पिता की आज्ञापालन करना, अपनी ही जाति में विवाह करना, मृत्युभोज, छुआछूत, दहेज आदि अनेक प्रथाएं भी समाज में प्रचलित हैं।

४- <u>नैतिकता तथा धर्म :</u> नैतिकता शब्द कर्तव्य की आन्तरिक भावना पर बल देता है, अर्थात् इसका सम्बन्ध सत- असत, उचित और अनुचित से है। नैतिकता का पालन व्यक्ति इसलिए करता है कि उसके पीछे न्याय पवित्रता और सच्चाई के भाव होते हैं। नैतिकता का सम्बन्ध स्वयं के अच्छे और बुरे महसूस करने पर निर्भर करता है। नैतिकता अत्यधिक गत्यात्मक, रचनात्मक तथा रूढ़िवादी तत्वों का विरोध करने वाली होती है।

नैतिकता का सम्बन्ध धर्म से भी है। प्रत्येक धर्म में हमें नैतिक नियम देखने को मिलते हैं। नैतिक नियमों का पालन धार्मिक भय के कारण भी करते हैं क्योंकि कुछ नैतिक नियमों की उत्पत्ति ईश्वरीय एवम् अलौकिक मानी जाती है। उनका पालन न करने का अर्थ ईश्वर को रूष्ट करना, पालन करना ईश्वर को प्रसन्न करना है। धर्म में स्वर्ग और नरक की कल्पना की गयी है जिसके भय से व्यक्ति धार्मिक नियमों का पालन करते हैं। मूलत: नैतिकता का सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। मजदूर को उचित मजदूरी

देना धार्मिक मानदण्ड है ।

फ्रायड यह मानते हैं- " धर्म का मानव के अचेतन मस्तिष्क से सम्बन्ध है । धर्म नैतिकता को शक्ति प्रदान करता है और उसका सम्बन्ध दैवी शक्ति से है किन्तु सभी नैतिक नियम धर्म में सम्मिलित नहीं होते हैं कुछ कम महत्वपूर्ण नैतिक नियम धर्मनिरपेक्ष भी होते हैं[1]।

नैतिकता प्रथा की अपेक्षा आत्मचेतना से अधिक प्रेरित होती है । नैतिकता जनरीतियों एवम् लोकाचारों की अपेक्षा अधिक स्थायी होती है । न्याय, ईमानदारी, सच्चाई, निष्पक्षता, कर्तव्यपरायणता, अधिकार, स्वतंत्रता, दया और पवित्रता आदि नैतिक धारणाएं ही हैं । "नीति" कुछ असाधारण विचारकों के अमूर्त चिन्तन का विषय भी रहा है जैसे अरस्तू का नीतिशास्त्र ।

५- कानून (Law) : सामाजिक प्रतिमानों में कानून सर्वाधिक शक्तिशाली है । कानून के नियम हैं जिनके पीछे राज्य की शक्ति होती है । प्रो० डेविस ने कानूनों को दो भागों में बांटा है- प्रथागत कानून और वैधानिक कानून ।

प्रथागत कानून उन समाजों में पाये जाते हैं जिनमें सामाजिक नियमों का पालन कराने के लिए कोई विशिष्ट संगठन नहीं होते हैं ।

१- एम०एल० गुप्ता, डी०डी० शर्मा, समाजशास्त्र, पृ०- ३८४

जहां न तो आधुनिक समाजों की तरह विधान-निर्मातृ सभा होती है, न ही कानून, न्यायाधीश, पुलिस पेल एवम् गुप्तचर संस्था ही । वहां पर भी न्याय के लिए एक परिषद् होती है, एवम् प्रतिवादी के पक्षों को सुना जाता है, गवाही ली जाती है । दोनों पक्षों को सुनने के बाद दोषी व्यक्ति को हानि के रूप में या शारीरिक दण्ड के रूप में हो सकता है ।

जनसंख्या एवम् राज्य के कार्यक्षेत्र में वृद्धि के फलस्वरूप सारे समुदायसदस्य अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह अपराधियों को पकड़ने के लिए स्वयं दौड़ पड़े तथा उन्हें दण्ड दे । इस कारण हमें समाज में नियमों को लागू करने एवम् व्यवस्था बनाए रखने के लिए किसी विशिष्ट संस्था की आवश्यकता पड़ती है । इसके लिए पुलिस की व्यवस्था की जाती है । लोकाचारों के स्थान पर नियमों के निर्माण के लिए विधान-मण्डल की आवश्यकता पड़ती है । उनकी व्यवस्था एवम् निर्णय के लिए न्यायालय की स्थापना करनी पड़ती है । ये कानून लिखित एवम् पूर्णतः परिभाषित होते हैं ।

अतः कानून के नियम है जिन्हें बनाने, लागू करने एवम् उनका उल्लंघन करने पर दण्ड देने की शक्ति समाज के एक संगठित समूह में होती है जिसे हम सरकार कहते हैं ।

(६) सामाजिक प्रतिमानों का समाजशास्त्रीय महत्व

प्रत्येक समाज में सामाजिक प्रतिमान पाये जाते है। हाब्स ने ऐसे समाज की चर्चा की थी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ संघर्षरत था और प्रत्येक जीवन एकाकी, दरिद्र एवम् निरर्थक था। किन्तु आज मानव ऐसे समाज में रहने का अभ्यस्त है जिसमें आदर्शात्मक नियंत्रण होते है।

(७) आधुनिक समाज में प्रतिमानों की स्थिति

आधुनिक समाज में परिवर्तन अनिवार्य हो गया है। आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्र औद्योगीकरण एवम् नगरीकरण के कारण विशेष प्रभावित हुए हैं। इस प्रकार प्राचीन प्रतिमानों की स्थिति दयनीय सी होती जा रही है।

आर्थिक क्षेत्र में मालिक- नौकर(दास) के बीच स्थापित सम्बन्ध समाप्त सा होता जा रहा है। अब श्रमिक वर्ग मालिकों (पूंजीपतियों) से मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को पालन करने के लिए बाध्य कर रहा है। इसी के परिणाम स्वरूप आधुनिक समाज में नित्यप्रति (लड़ाई) संघर्ष जारी है।

धार्मिक क्षेत्र में स्थापित प्रतिमान भी अपना महत्व खोते जा रहे हैं। देवी - देवताओं का महत्व घटता जा रहा है। आजकल

धार्मिक स्थान ही समाज को विघटित करने का कार्य कर रहे हैं ।

सांस्कृतिक क्षेत्र में भी स्थापित प्रतिमान समाप्त से हो गये हैं । खान-पान, रहन- सहन विवाह आदि क्षेत्रों में स्थापित प्रतिमान विशेष प्रभावित हुए हैं । अन्तर्जातीय विवाह, ब्राह्मणों की स्थिति विशेष रूप से प्रभावित है । आजकल प्रेमविवाह, मन्दिर विवाह, होटल की स्थापना आदि का वर्चस्व स्थापित हो गया है ।

राजनीति के क्षेत्र में आजकल राजनीतिक वर्ग ही प्रजा का सबसे बड़ा शोषक सिद्ध हो रहा है । उदाहरण के लिए प्रजा से अत्यधिक कर वसूलना, समाज में भ्रष्टाचार को फैलाने वालों को संरक्षण प्रदान करना आदि ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक प्रतिमान नि:शेष होने की स्थिति में पहुंच रहे हैं । आजकल कानून एवम् पुलिस व्यवस्था का महत्व बढ़ता जा रहा है । समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिए ये ही महत्वपूर्ण साधन हैं । इसके अतिरिक्त जो नवीन प्रतिमान समाज में उभर रहे हैं उनकी स्थिति पूर्णत: सुदृढ़ नहीं हो पायी है । यथा आर्थिक क्षेत्र में स्थापित नवीन प्रतिमान " मजदूरों को उचित मजदूरी मिलनी चाहिए" का पालन पूर्णरूपेण नहीं हो पा रहा है । पूंजीपतियों का शोषण आज भी आर्थिक समाज में विद्यमान है ।

डा० लाल के नाटकों में सामाजिक प्रतिमान

डा० लाल के नाटकों का वैचारिक धरातल बहुत व्यापक है । प्रचलित अर्थों में न वे अपने तक ही सिमट गये हैं और न ही सम्पूर्ण समाज का ही निरूपण कर सके हैं । वे अपने और अपने परिवेश के साथ संघर्ष करते हुए दिखाई पड़ते हैं । उनका जीवन मूलरूप में ग्रामीण धरती से जुड़े रहने के साथ ही साथ उनके जीवन में शहरीकरण का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है । उनके नाटकों का अध्ययन करने के उपरान्त यह प्रतीत होता है कि जिस तरह से उनका जीवन ग्रामीण जनसमुदाय के बीच पलकर शहरी जन समुदाय में समर्पित हो गया, उसी प्रकार उनके नाटक भी ग्रामीण अंचल का वर्णन करते हुए शहरी विरोधाभासों में खोये से प्रतीत होते हैं । उनके नाटकों में विशेष रूप से पारिवारिक जीवन की अस्तव्यस्तता एवम् द्वन्द्व का चित्रण मिलता है ।

भारतीय समाज में अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिमान, जनरीतियां, लोकाचार अथवा रूढ़ियां, प्रथा, कानून, नैतिकता और धर्म प्रचलित हैं । इनके आधार पर समाज, जनसमुदाय पर नियंत्रण स्थापित करता है । प्रारम्भ में जब आधुनिक प्रकार की कानूनी व्यवस्था नहीं थी, तब यही जनरीतियां, रूढ़ियां, प्रथाएं ही सम्पूर्ण समाज को अपने दायरे में बांधकर रखती थीं । आधुनिक जटिल समाज में कानून, न्यायालय, पुलिस, प्रशासन आदि के द्वारा विशेष रूप से व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया जा रहा है । मूलत: सामाजिक प्रतिमान एवम्

सामाजिक व्यवस्था एक दूसरे पर आश्रित है ।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक विशेष रूप से पारिवारिक, धार्मिक क्रियाकलाप, राजनीतिक जीवन आदि से सम्बन्धित हैं । डा० लाल के स्त्री एवम् पुरुष पात्र जो पारिवारिक जीवन में बंधे हुए हैं, एक घुटन सी महसूस कर रहे हैं : यथा- करफ्यू नाटक में गौतम कविता । डा० लाल ने राजनीतिक स्थिति पर व्याप्त राजनेताओं के भ्रष्ट चरित्र को विशेष रूप से उजागर किया है । " रक्त कमल " नाटक इसका सजीव चित्र अपने अन्दर समेटे हुए है । धार्मिक प्रतिमान के विषय में तो उन्होंने सम्पूर्ण धार्मिक प्रतिमानों की मान्यता रहित बतलाया है । उनके अनुसार " जिस मन्दिर के निर्माण में गरीब मजदूरों का खून-पसीना एक हुआ, उसी मन्दिर के निर्माणोपरान्त क्या वह गरीब उस मन्दिर में पैर तक नहीं रख सकता ।" इसके अतिरिक्त धार्मिक प्रतिमानों के आधार पर निर्मित वैवाहिक प्रतिमानों को भी डा० लाल ने पुनर्विचार ललकारा है । " राम की लड़ाई " में विमला (ब्राह्मण) और रामगुलाम (हरिजन) का विवाह सम्पन्न कराया है । साथ ही खान-पान का भी प्रतिमान धराशायी होता दिखाई पड़ रहा है । नाटक "रक्त कमल " में कमल धोबी की लड़की अमृता के घर खाना खाकर इसका उत्तर स्वयं अपनी माँ को ही बताता है जिसने उसे पैदा किया है । कानूनी प्रतिमानों का तो विशेष रूप से खण्डन दिखाई पड़ रहा है । "रक्त कमल " में ही " मुकराम " अफसर भी बनाता है और पुलिस

(कानून के रखवाले) की धमकी देने पर उसे निष्क्रिय करार देता है। इन्हीं तथ्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन नीचे किया जा रहा है।

① जनरीतियां

अब हम डा० लाल के नाटकों के आधार पर जनरीतियों, रूढ़ियों एवम् संस्थाओं का उल्लेख करेंगे। भारतीय संस्कृति शुद्ध रूप में गांवों में विशेष रूप से प्राप्त होती थी, कुछ है भी। औद्योगीकरण के उपरान्त नगरीकरण का उद्भव हुआ। सम्पूर्ण परिवर्तन का कारण यही औद्योगीकरण है जिसका मूलकारण मशीनीकरण हो सकता है। इसके उपरान्त सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था अपने मूलरूप को भूलती सी प्रतीत हो रही है। जनरीतियों, रूढ़ियों आदि का रूप परिवर्तित हो रहा है। प्राचीनता को, आधुनिकता पिछड़ा हुआ एवम् रूढ़िग्रस्तता का सूचक मानने लगी है। प्राचीन एवम् मध्ययुग के वस्त्र धारण करने के तरीके आधुनिक परिवेश में केवल उपहास की वस्तु बनकर रह गये हैं। पूजा, अर्चन, विवाह आदि से सम्बन्धित जनरीतियां बिल्कुल बदली सी नजर आ रही है। डा० लाल के नाटकों में व्याप्त नवीनता एवम् प्राचीनता (भारतीयता + पाश्चात्यता) का द्वन्द्व उजागर हुआ है।

<u>ग्रामीण एवम् शहरी जनरीतियां :</u> डा० लाल के पात्र रहन-सहन के दृष्टिकोण से ग्रामीण एवम् शहरी जीवन दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भाषा या बोलचाल के दृष्टिकोण को देखने पर यही प्रतीत होता है। " अंधा कुआं ", " सुन्दर रस " के पात्र प्राचीनता के द्योतक हैं।

सुन्दररस का कथानक बिलकुल प्राचीन आश्रम व्यवस्था पर आधारित है। जैनाथ और शक्तिदेव पंडितराव के यहाँ रहकर ही विद्या ग्रहण कर रहे हैं। उनका संस्कार एवम् क्रियाकलाप बिलकुल आश्रम व्यवस्था के विद्यार्थियों से मिलता जुलता है। वे गुरु के घर जाकर उनकी सेवा करते हुए विद्याध्ययन कर रहे थे।

सुमित्र : ये लोग शिष्य हैं पंडित जी के।

वीणा : पढ़ते हैं।[१]

जातीयता पर प्रहार : डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में जातीय बन्धन, धार्मिक क्रियाकलाप, सामाजिक बन्धन (स्त्री - पुरुष) का उल्लेख मिलता है। जाति बन्धन एवम् संस्कार समाज की मूल जड़ है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने जातीय वर्णव्यवस्था की रूढ़िवादी प्रवृत्तियों को ललकारा है। डा० लाल ने जाति के आधार पर समाज के बटवारे को अनुचित माना है। वे सम्पूर्ण जीव को एक ही ईश्वर की सन्तान मानते हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि' जैसे सूत्र का भी उल्लेख उन्होंने अपने नाटकों में किया है। नाटक 'मृत्युंजय' में डा० लाल की इस समतावादी दृष्टिकोण को देखा जा सकता है।

अजय सिंह : हरिया! ----- हम सब हिन्दुस्तानी हैं। यही हमारी जाति है, यही हमारा धर्म है। जब तक हम छुआछूत और धर्म के भेदभाव को मानते

१- सुन्दर रस, पृ०- ३०

रहेंगे हम कभी भी आबाद नहीं होंगे ।[1]

② रूढ़ियां

<u>भारतीयता का आग्रह :</u> डा० लाल के नाटकों में समाज में व्याप्त खान-पान, विवाह, धार्मिक संस्कार आदि से सम्बन्धित रूढ़िगत प्रवृत्तियों का बड़े ही रोचक ढंग से खण्डन किया है। डा० लाल समाज में व्याप्त जातीय वर्णव्यवस्था के अस्तित्व को मानने से इंकार करते हैं। वे सम्पूर्ण जीवन को एक ही जाति के रूप में स्वीकार करना चाहते हैं। भारतवर्ष में प्रचलित " ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र," चार प्रकार के वर्णों को समाप्त कर एक ही जाति " हम भारतीय हैं " को स्वीकार करना चाहते हैं।

कमल : तुम्हारी जाति।

आदित्य: भारतीय।[2]

<u>जातिगत रूढ़ियों का खण्डन : विवाह,खान-पान आदि के सन्दर्भ में :</u>

नाटककार डा० लाल ने जाति व्यवस्था पर आधारित विवाह, खान-पान, आचरण आदि रूढ़िग्रस्त संस्कारों का खण्डन किया है। <u>"राम की लड़ाई "</u> नाटक में डा० लाल ने जाति व्यवस्था को ललकारा है।

१- मृत्युंजय, पृ०- ८२
२- रक्तकमल, पृ०- ७६

उसमें उन्होंने ब्राह्मण की कन्या का विवाह निम्न जाति के रामगुलाम से करवाया है और इस नवीन व्यवस्था के प्रति पूर्ण समर्थन भी व्यक्त किया है ।

रामगुलाम : रामगुलाम बोलता नहीं देखता है । देख रहा हूं तुम लोग कब तक बोलते हो । विमला कोई मामूली लड़की नहीं है । वह अत्याचार, अन्याय के अन्धकार को चीरकर बाहर आयी है । उसने मुझे जगाया है कोई ताकत हमें अलग नहीं कर सकती है ।[१]

डा० लाल ने समाज में व्याप्त खान-पान सम्बन्धी वर्ण व्यवस्था को भी अस्वीकार किया है । उनके अनुसार यह विचार कि ब्राह्मण वर्ण निम्न वर्ण शूद्र के यहां भोजन नहीं कर सकता है, एक रूढ़िग्रस्त विचार है । उन्होंने इसका खण्डन किया है ।

मां : तुम कहां थे कमल ? आज सुबह ही से मैं तुम्हें ढूंढ़ रही हूं । तुमने आज कुछ खाया पिया नहीं ।

कमल: भोजन कर लिया मां ।

मां : कहां ?

कमल: अनुता के घर ।[२]

१- राम की लड़ाई, पृ०- २३

२- रक्तकमल, पृ०- ३२

अमृता एक निम्न जाति (मोची) की लड़की है, उसके घर भोजन करना मूलतः इस निम्न रूढ़िग्रस्त वर्ण व्यवस्था के प्रति विद्रोह ही है।

सामाजिक सम्पूर्णता और ऐक्य : डा० लाल जाति के आधार पर समाज विभाजन के प्रबल विरोधी हैं। इस सम्बन्ध में उनकी नैतिकता अपने अन्दर एक आदर्श छिपाये हुए है। डा० लाल ने " सरयू " नामक पात्र के माध्यम से अपनी समन्वयात्मक विचारधारा को सामने रखा है। सम्पूर्ण जातीयता को समझाने का यही उत्तम साधन है।

> सरयू : तुम मन्दिर के केवल शिखर देखते हो, जब कि मन्दिर एक सम्पूर्ण है नींव से लेकर ऊपर तक। कुछ टूटे और कटे हो तभी हर चीज को उसकी सम्पूर्णता से तोड़कर देखते हो।[१]

" अंधकूप " नाटक में इस ऐक्य भावना पर पूर्ण जोर देते हैं।

> ठकुरानी : केवल इतना समझती हूं- आकाश के नीचे जिस पृथ्वी पर चांद और सूरज के प्रकाश में हम सब समान रूप से खड़े हैं यह साबित करता है हम सब एक हैं, समान हैं।[२]

इस प्रकार डा० लाल ने कुरीतियों, रूढ़ियों, प्रथाओं की तुच्छता के तरफ पूर्णरूपेण संकेत किया है। समाज में व्याप्त तुच्छ

१- राम की लड़ाई, पृ०- २८

२- अंधकूप, पृ०- ६२

वर्णव्यवस्था के आधार स्वरूप खान-पान, चरित्र आदि को अमान्य घोषित करते हुए परिवर्तन के पक्षपाती प्रतीत होते हैं। वे सम्पूर्ण धरातल को "एक" का रूप प्रदान करना चाहते हैं। वे सम्पूर्ण जीवों में एक ही ईश्वर के दर्शन प्राप्त करते हैं।

<u>विवाह : दाम्पत्य का द्वन्द्व, दोनों पक्षों की स्वतन्त्र भूमिका :</u> डा० लाल ने पति-पत्नी के बीच व्याप्त द्वन्द्व को विस्तृत रूप से चित्रित किया है। वर्तमान समय में आपसी अविश्वास के कारण यह आदर्श सम्बन्ध विघटकारी होता जा रहा है। डा० लाल के नाटक "रातरानी", "मादा कैक्टस" आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। "सूखा सरोवर" नाटक में नारी पात्रों को उसी तरह कसौटी पर कसा गया है जिस प्रकार से राम ने सीता को कसा था। इस नाटक में राजा इस आधार पर रानी को मरवा डालता है कि उसके द्वारा सरोवर में घड़ा डालने पर पानी नहीं होता है। यह एक प्रकार की धार्मिक रूढ़िवादिता ही तो है। भारतीय स्त्रियां इस बात को मानती हैं कि पति-पत्नी का सम्बन्ध जीव और ईश्वर का सम्बन्ध है। पत्नी, पति को आराध्य समझकर पूजा करती है। भारतीय संविधान में भी एक पत्नी को नियम के रूप में पारित कर दिया गया है। पर यह आदर्श बिल्कुल व्यर्थ है। डा० लाल ने भी इस भावना को अस्वीकार करते हुए इसे असत्य घोषित किया है। उनके अनुसार प्रत्येक पक्ष समान अधिकार रखता है। न कोई किसी का

ईश्वर है और न कोई आत्मा। यह आदर्श झूठ है।

कविता : आदर्श पति- आदर्श-पत्नी

गौतम : यह विश्वास करो है।

कविता : यह झूठ है।[१]

<u>विवाह का प्रतिमान- प्रेम, दहेज नहीं</u> : डा० लाल ने विवाह के क्षेत्र में एक आदर्श उपस्थित किये हैं कि विवाह का प्रतिमान प्रेम होना चाहिए न कि दहेज। यह प्रतिमान अति उत्तम सिद्ध हो सकता है। यदि सम्पूर्ण समाज इस आदर्श का पालन करे तो समाज में व्याप्त अनेक बुराइयाँ यथा- अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, बहुओं की हत्या---- आदि समाप्त हो सकती हैं :

> मेखला : मेरा यह जन्मसिद्ध अधिकार है, मेरा पति वही होगा जो मेरा प्रियतम होगा।
>
> युवक : अब यह शादी हर्गिज नहीं कर सकता------ मैं कोई सौदा हूँ जो मैं इस तरह कहीं बेचा और खरीदा जाऊँ। -----।[२]

इस नाटक में " युवक " नामक पात्र स्वेच्छा से विवाह करता है। वह पिता एवम् समाज के अन्य ठेकेदारों की चाल को व्यर्थ साबित कर देता है :

१- करफ्यू, पृ०- ३५

२- सूर्यमुख, पृ०- १०२

दूसरा व्यक्ति : और सिर्फ ब्याह क्यों कहता है बेटा ?
है जी, प्रेम विवाह कहना। है जी।---[1]

स्त्री के स्वत्व का समर्थन : डा० लाल दाम्पत्य जीवन में केवल एक ही पक्ष की प्रधानता से बहुत ही क्षुब्ध दिखाई पड़ते हैं। वे समाज के इस सौतेले व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहते हैं। वे समाज की इस रूढ़िवादिता को ललकारा है कि पुरुष के बिना स्त्री का अस्तित्व व्यर्थ है।

कविता : हाँ एक पुरुष। उसके सब अर्थों में। पुरुष
जिसके बिना स्त्री का कोई अस्तित्व ही नहीं।
पुरुष जिसकी चाह हर स्त्री अपनी आत्मा में
पालती है। पुरुष जिसकी गोद ही हर स्त्री
की मुक्ति है।[2]

स्त्री - पुरुष समाज में बराबर अस्तित्वधारी जीव है, फिर कैसा यह पक्षपात। यह प्रवृत्ति समाज में एक विष पैदा कर सकती है जो समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

इसके अतिरिक्त डा० लाल पत्नी को घर की शोभा की वस्तु ही नहीं बनी रहने देना चाहते हैं। इस क्षेत्र में औद्योगीकरण का प्रभाव भी वे पूर्णरूपेण स्वीकार करते हैं। "करफ्यू," "रातरानी,"

1- अब्दुल्ला दीवाना का नाटक, पृ०- २७१
2- करफ्यू, पृ०- २८

उसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। " रातरानी " में " जयदेव " अपनी पत्नी को बलपूर्वक विश्वविद्यालय में नौकरी करने के लिए बाध्य करता है। " करफ्यू " में भी मीनाक्षा गौतम से पत्नी के दैनिक क्रियाकलाप के बारे में पूछती है।

मीनाक्षा : आपकी वो क्या करती है ?

गौतम : घर में रहती है।

मीनाक्षा : कहां तक पढ़ी है ?

गौतम : एम० ए० इतिहास

मीनाक्षा : और सारा दिन घर में रहती है---- तभी तो बीमार है।[1]

डा० लाल ने पति- पत्नी के बीच जो भयंकर अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है, उसका चित्रण बहुत ही सुन्दर रूप में किया है। आधुनिक परिवेश में पत्नी केवल घर की शोभा बनकर ही नहीं रहना चाहती है वह अपनी अन्त ज्योति प्रकाशित करना चाहती है पर जब वह पुरूषों की सत्ता से नहीं बच पा रही है तो अपना अधूरा संसार ही छोड़कर चल बसती है। मीनाक्षा, गौतम की पत्नी की अस्वस्थता का यही कारण बताती है।

"करफ्यू" नाटक उनकी भावनाओं का एक विकसित रूप अपनी

१- करफ्यू, पृ०- ३८

सुन्दर संजोकर दर्शकगण के समक्ष प्रस्तुत होता है। भारतीय संस्कृति एवम् भारतीय संविधान इस बात का प्रमाण है कि भारतीय जन समूह नारी एवम् पुरुष को एकल विवाह की ही अनुमति देता है। विवाह की परिणति समाज में स्थायित्व एवम् उन्मुक्त सम्भोग की प्रवृत्ति को रोकने का सुन्दर उपाय है। पर पाश्चात्य जगत् में जिस प्रकार से एक व्यक्ति-स्त्री एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपना निवास स्थापित करती है उसी प्रकार एक पत्नी, पति को छोड़कर अन्य को भजना करती है। यह सामाजिक प्रतिमान का उल्लंघन है। आधुनिक नारी एवम् पुरुष समुदाय केवल एकल विवाह से ही सन्तुष्ट नहीं हो पा रहा है। पुरुष की भावनाएं विशेषकर कुछ समय बाद नारी के प्रति बदलती जा रही हैं, धीरे - धीरे नारियां भी इसी मार्ग का अनुसरण करने लगी हैं।

दाम्पत्य जीवन में मुक्त यौन सम्बन्ध की प्रथा : कर्फ्यू नाटक के कथासूत्र पर ध्यान दें तो पायेंगे कि गौतम की पत्नी कविता संजय के घर रात भर प्रेमक्रीड़ा करती है और गौतम अपने घर मीना नामक लड़की के साथ प्रेमालाप करता है। इसके साथ ही डा० लाल ने यहभी इंगित किया है कि उसी दिन गौतम और कविता की शादी की सालगिरह भी थी। इससे यह प्रतीत होता है कि डा० लाल ने भारतीय पति-पत्नी के जीवन को संवारा नहीं, उजाड़ा है। " कर्फ्यू " नाटक में मीना जब पुनः लौटकर आती है तो वह गौतम से अपने बारे में सब कुछ बताती

है। पुनः वह कहती है कि अब मैं यहां से भागकर नहीं जाऊंगी।
" मनीषा- गौतम " को पुनः उत्तेजित करती है, उसके कपड़े उतारती
है और उसकी बाहों में सिमट जाती है।

मनीषा : चुप क्यों हो गये ? इतना मुश्किल नहीं है यह
सब, अच्छा यह टाई निकाल दो। लाओ
तुम्हारी कमीज मैं निकाल दूं। इसी तरह तुम
भी मेरा कुर्ता निकालो। निकालो -----
निकालो------ नहीं निकलता है तो फाड़ दो---।[1]

इसी प्रकार कविता भी संजय के घर सर्वप्रथम तो नाटक करती है,
परन्तु वह भी पानी पीने के बहाने बलपूर्वक संजय से दरवाजा खुलवा लेती
है और आकाश से गिरते पंख को पकड़ने के बहाने वह संजय की गोद में
स्वयं ही समा जाती है।

कविता : अपना पंख मेरे जूड़े में लगाओ- मैं अपना पंख
तुम्हारे बाल में बांधती हूं।[2]

<u>लोकाचारों की अवमानना :</u> डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने लोकाचारों
के प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट की है। नाटक " कर्फ्यू " में कविता
नामक नारी पात्र स्त्री - पुरूष के बीच स्थापित लोकाचारों से बिल्कुल
<u>अनभिज्ञ सी लगती है।</u> जबकि भारतीय नारी का गुमान मानी

१- कर्फ्यू, पृ०- ६१
२- वही - ,,

जाती है और पति की मृत्यु के बाद ही तोड़ी जाती है। पर कविता इससे अनभिज्ञ है वह कहती है :

कविता : चूड़ी टूट जाने से इतना दीन क्यों हो जाता है।[1]

<u>बाह्य जगत में स्त्री की दिशा :</u> औद्योगीकरण एवम् नगरीकरण के फलस्वरूप इस पवित्र सम्बन्ध (पति- पत्नी का सम्बन्ध) के बीच दरार सी पड़ती जा रही है। यह सम्बन्ध निर्वाह इन दोनों के ही ऊपर निर्भर है। पर बलपूर्वक अधिकार नहीं किया जा सकता है। आजकल पुरूष नारी को मुक्त करने के विचार से ग्रस्त है। वह उस पर बलपूर्वक अधिकार नहीं करना चाहता है। यह समस्त सामाजिक प्रतिमानों में सुधार ही है। अब वह समय लद चुका है जब पति के बिना पत्नी का जीवन समाप्त हो जाता था। आज स्त्री भी पति के समूह कार्य व्यापार कर सकती है वह उनसे किसी रूप में पीछे नहीं रह सकती है। यह प्रत्यक्ष रूप में देखा भी जा रहा है। डा० लाल ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। " करफ्यू " की नायिका कविता और नायक गौतम इस भावना के प्रतीक सिद्ध हो रहे हैं। गौतम कविता को घर की चारदीवारी से बाहर जाने के लिए प्रेरित करता है- आधिकार

१- करफ्यू, पृ०- ६२

कविता : स्त्री घर में रहती है।

गौतम : दुनिया उसके बाहर है।

कविता : उसकी दुनिया यही है।

गौतम : किसने कहा ?

कविता : किसी ने नहीं यही उसका स्वभाव है।

गौतम : तुम्हें कब मैंने रोका।[1]

③ नैतिकता तथा धर्म : सम्पूर्ण जीवों की समता :

नैतिकता का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि क्षेत्र विशेष प्रभावित हैं। धार्मिक क्षेत्र में डा० लाल की नैतिकता क्या है ? डा० लाल बीसवीं शताब्दी के बुद्धिजीवी वर्ग के सदस्य हैं। धार्मिक क्षेत्र में डा० लाल की मानसिकता बहुत ही विस्तृत एवम् उदार है। वह धर्म के आधार पर भेदभाव के प्रबल विरोधी हैं। सम्पूर्ण जीवों में एक ही ईश्वर के दर्शन प्राप्त करते हैं। डा० लाल के अनुसार इस धरती पर रहने वाले सम्पूर्ण जीव एक समान हैं। इसका प्रमाण " पंचपुरुष " में प्राप्त किया जा सकता है।

ठकुरानी : केवल इतना समझती हूँ- आकाश के नीचे जिस पृथ्वी पर चाँद और सूरज के प्रकाश में हम सब

१- करफ्यू, पृ०- ८६

समान रूप से खड़े हैं, यह साबित करता है, हम सब एक हैं

समान हैं।[1]

<u>राजनैयिक नैतिकता</u> : प्रजातन्त्र का समर्थन : राजनीति के क्षेत्र में

डा० लाल की नैतिकता शुद्ध रूप में प्रजातन्त्र की समर्थक है। वे उसी

को राजनेता का पद प्रदान करना चाहते हैं जिसे जनता बनाना चाहती

है। इस तथ्य को वे स्वयं राजनेता के मुख से ही प्रकट करते हैं।

राजा : फिर अभिषेक कैसा ?

छोटा राजा ? वही अभिनय जिसे तुमने किया था, सारी के

प्रजा के बीच और मैं चुप खड़ा देखता था----

(राजा को हंसी आ जाती है)

राजा : मैं तो कुछ भी नहीं हूं

सब कुछ प्रजा है

उसने मुझे केवल प्रतिनिधि चुना है

ले लो प्रजा से ----।[2]

<u>आर्थिक नैतिकता : मूल्य सिद्धान्त</u> : आर्थिक क्षेत्र में डा० लाल की नैतिकता मानववादी

१- पंच पुरुष, पृ०- ६१

२- सूखा सरोवर, पृ०- ५२

होती है। डा० लाल पूँजीपतियों एवम् श्रमिकों के बीच व्याप्त द्वेष को बहुत ही उच्च स्तर पर लाकर समाप्त किया है। वे मार्क्स के 'अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त' के समर्थक है। उनका कहना है कि लागत के अतिरिक्त जो लाभ होता है उसमें पूँजीपति एवम् श्रमिकों का बराबर का अधिकार है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह नैतिकता दोनों के बीच व्याप्त विवाद को समाप्त भी कर सकती है। " रातरानी " नाटक में " कुंतल " इस पक्ष पर विशेष बल प्रदान करती है।

कुंतल : मैं यह नहीं समझ पाती तुम प्रेस के कर्मचारियों को
उनका बोनस क्यों नहीं देते ?

" कुंतल ""माली"से श्रमिकों को फल देने को कहती है। फल पाकर श्रमिक कह उठता है-

पहला व्यक्ति : शुक्रिया। पर फल हम क्या करेंगे।
इसमें मजदूर का पेट नहीं भर सकता है।

कुंतल : है लो---- इस फल में तुम्हारा भी हिस्सा है।
यह भूख नहीं अधिकार है तुम्हारा।[१]

डा० लाल धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक क्षेत्र में एक उच्च मानसिकता के प्रवर्तक सिद्ध होते हैं। धार्मिक एवम् सामाजिक

१- रातरानी, पृ०- ६२

क्षेत्र में डा० लाल " सर्वधर्म समभाव " एवम् समानता के पुजारी हैं। आर्थिक क्षेत्र में वे पूंजी पतियों के शोषण युक्त कार्य के प्रबल विरोधी हैं। वे मजदूरों को उनका अधिकार दिलवाना चाहते हैं। राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त हिंसा से अत्यन्त दुःखी प्रतीत होते हैं। डा० लाल उसी को राजनेता स्वीकार करना चाहते हैं जिसे जनता चाहती है। इस प्रकार डा० लाल प्रजातंत्र के पक्के समर्थक हैं।

(६) कानून : बिगड़ी हुई स्थिति : अशांति और भ्रष्टाचार

आधुनिक समाज के नियंत्रण में कानून की अहम् भूमिका है। राजनैतिक संस्था जिसका आधार कानून है। एक राजनेता समूह का प्रतिनिधि होता है। समूह की भावनाएं उसी के माध्यम से सम्मिलित स्वर में व्यक्त होती हैं। प्रजा का सुख- दुःख वही बांटता है। डा० लाल ने आधुनिक काल में व्याप्त राजनैतिक संस्था एवम् कानून की बिगड़ी हुई स्थिति का सजीव चित्रण किया है। राजनैतिक संस्था पूर्णरूप से अपने द्वारा स्थापित प्रतिमानों से दूर हटती जा रही है। जिस कानून का यह कार्य है वह दुष्ट को दण्ड देकर समाज में शांति और व्यवस्था स्थापित करे, वही कानून आज शान्ति की जगह अशांति और भ्रष्ट चरित्र पैदा कर रहा है। समाज में चारों तरफ इन कानूनी खोटों के कारनामे, शोषण, बलात्कार, चोरी, जीवन हनन जैसे क्रियाकलापों के रूप में प्रतिफलित हो रहे हैं।

डा० लाल ने अपने नाटक में राजनैतिक संस्थाओं के क्रियाकलापों का भी पर्दाफाश किया है। ' राम की लड़ाई ' नाटक में मसखरा नामक पात्र कानून के प्रहरी नेताओं का दुश्चरित्र जनमानस तक सम्प्रेषित कर रहा है।

मसखरा : अपने आपको राजनीति का आदमी मत कहो। भ्रष्ट राजनीति का पशु कहो। ----- मैं तो आपकी प्रजा हूं। उन्नीस सौ सतावन में पांच कुएं खोदे गये कागज पर, ढाई हजार की कुआं, सन् साठ में तीन तालाब पाटे गये, जबकि तालाब थे ही नहीं---- ।[1]

नेताजी : सांड जी इसका मुंह बन्द।

सांड जी : ये रहा मुहरबन्द।[2]

<u>लाठी तंत्र का प्रसार :</u> नेतागण उस व्यक्ति को भी पथभ्रष्ट कर रहे हैं जो कानून का पुजारी है। इस प्रकार सम्पूर्ण राजनैतिक प्रतिमान को समाप्त करने वाले ये स्वयं ही हैं। ये नेतागण प्रजातंत्र के नाम पर लाठी तंत्र का प्रसार कर रहे हैं। आजकल राजनैतिक संस्थाओं के चुनाव में विशेष भ्रष्टाचार फैल गया है। मतदान केन्द्रों पर कब्जा

१- राम की लड़ाई, पृ०- २०

२- -वही- पृ०-२१

कब्जा करके अपने पक्ष में मत डलवा कर विजय प्राप्त कर ली जा रही है।

भैताई : वाह-वाह। ऐसा इलेक्शन फिर कभी नहीं
आयेगा।

लाल जी : एक वूथ की लुटाई में पांच हजार रुपये।[1]

<u>चुनाव : हत्या, षड्यंत्र :</u> चुनाव के दौरान लोगों के मौलिक अधिकारों का भी हनन हो रहा है। " जीवन जीने का अधिकार " जो भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार के रूप में जन समूह को प्राप्त है उसका भी पालन सही रूप में नहीं हो रहा है। चारों तरफ हत्याओं का साया फैला हुआ है, जन-जीवन अस्त-व्यस्त है। निर्मला के पिता की हत्या भी चुनावी परिणाम है।

मालती : बहुत जुलुम हो गया। निर्मला दीदी के पिता
की हत्या हो गयी।[2]

<u>सरकार और पुलिस की सांठगांठ :</u> अपराध के क्षेत्र में व्याप्त हत्या, बलात्कार, चोरी आदि कार्यों में सरकार एवम् पुलिस का विशेष योगदान रहता है। अधिकांश अपराधी इन्हीं की छत्रछाया में पलते रहते हैं। नाटक " रक्त कमल " में डा० लाल ने इसका सुन्दर निरूपण किया है। <u>"गुरु " नामक पात्र सीतापुर</u> गांव में ऐसी ही अन्यायी, लोगों के प्राण

१- राम की लड़ाई, पृ०- २१
२- -वही- पृ०- ३२

भी ही, साथ ही वह डाकुओं का साथ भी दे रहा है। वह 'डाक्टर' को बल का भय दिखाकर उससे अनैतिक कार्य (डाकू की दवा) करवा लेता है। कानून का प्रहरी 'कमल' जब उसे कानून के रखवाले पुलिस को सूचित करने की धमकी देता है तो गुरु बड़े ही आराम से (पुलिस को) चुप रहने की व्यवस्था का उल्लेख कर डालता है।

कमल : इस बीच सरकार और पुलिस क्या चुप बैठी रहेगी।

गुरु : मुश्किल इसी का नाम है, सब चुप बैठे रहेंगे। भय सबसे बड़ी ताकत है।[१]

डा० लाल राजनैतिक प्रतिमान के सच्चे प्रहरी हैं। उन्होंने कानून की अव्यवस्था का यथार्थ रूप में चित्रण किया है। डा० लाल राजनैतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्ट आचरण के लिए राजनेताओं को ही दोषी स्वीकार किया है। उनके नाटकों के आधार पर भारतीय समाज का सजीव रूप देखा जा सकता है।

इस प्रकार डा० लाल भारतीय सामाजिक प्रतिमानों में विशेष परिवर्तन के पक्षधर हैं। डा० लाल के नाटक औद्योगीकरण एवम् नगरीकरण के प्रभाव को स्वीकार करते हुए उन्हें उचित ठहराते हैं।

१- रक्तकमल, पृष्ठ ७२-७३

आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में डा० लाल ने नवीन प्रतिमान उपस्थित किये हैं। ये प्रतिमान विशेष रूप से नैतिक एवम् मानव कल्याणकारी प्रतीत होते हैं। डा० लाल के अनुसार प्राचीन सामाजिक प्रतिमान रूढ़िग्रस्त एवम् मानवताविहीन हैं। डा० लाल परिस्थिति के अनुसार समाज में परिवर्तन होने के पक्षधर हैं। उन्होंने संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवार को महत्वपूर्ण माना है। विवाह के क्षेत्र में लड़के - लड़कियों की स्वतन्त्रता के पक्षधर हैं। इसी प्रकार अनेक परिवर्तन करके वे नवीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं।

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय- संस्कृति, समाज एवम् व्यक्तित्व (समाजीकरण)

व्यक्तित्व, संस्कृति एवम् समाज के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। मानव व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रमण एवम् भौगोलिक पर्यावरण का ही हाथ नहीं होता वरन् इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वंशानुक्रमण व्यक्तित्व के लिए शरीर रूपी कच्चा माल प्रदान करता है, जिसे समाज और संस्कृति परिपक्वता प्रदान करते हैं। " संस्कृति " का अर्थ होता है- विभिन्न संस्कारों के द्वारा बना सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति। यह परिमार्जन की एक प्रक्रिया है। संस्कारों को सम्पन्न करके ही व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनता है।

समाजशास्त्र में " समाज " शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया गया है। यहां व्यक्ति - व्यक्ति के बीच पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित व्यवस्था को समाज कहा गया है। इन सामाजिक सम्बन्धों का आधार व्यक्ति - व्यक्ति के बीच पायी जाने वाली सामाजिक अन्त:क्रियाएं हैं। यह सब कुछ निश्चित नियमों के आधार पर ही होता है। इन सबसे मिलकर बनने वाली व्यवस्था को ही समाज कहा गया है।

" व्यक्तित्व " चरित्र एवम् स्वभाव नामक शब्दों का पर्यायवाची

है। समाज वैज्ञानिकों ने "व्यक्तित्व" शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया है। किसी ने इसे समाज एवम् संस्कृति की उपज माना है, तो किसी ने शारीरिक एवम् मानसिक कारकों को। वास्तव में व्यक्तित्व व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक गुणों का योग है। इस प्रकार व्यक्तित्व का निर्माण प्रमुखत: तीन पक्षों से होता है- शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक।

"समाजीकरण" शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। मार्क्सवादी अर्थशास्त्री "समाजीकरण" शब्द का प्रयोग उत्पादन के साधनों एवम् सम्पत्ति पर समाज के अधिकार के रूप में करते हैं। समाजशास्त्र में इसका प्रयोग उन प्रक्रियाओं के लिए किया जाता है जिनके द्वारा व्यक्ति को सामाजिक, सांस्कृतिक संसार से परिचित कराया जाता है। इस अर्थ में समाजीकरण वह विधि है जिसके द्वारा संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह एवम् समाज के मूल्यों, जनरीतियों, लोकाचारों, आदर्शों एवम् सामाजिक उद्देश्यों को समझता है।

व्यक्तित्व तथा समाज

व्यक्तित्व को प्रभावित करने एवम् निर्मित करने वाले कारकों में समाज का महत्वपूर्ण योगदान है। समाज के अभाव में मानव जीवन

ही असम्भव है, तब व्यक्तित्व के निर्माण और विकास का प्रश्न ही नहीं उठता है। समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करता है और उसे मानव की संज्ञा प्रदान करता है। यदि किसी व्यक्ति की प्राणिशास्त्रीय रचना पूर्ण हो और वह समाज के सम्पर्क में न आया हो, उसके व्यक्तित्व का विकास कदापि सम्भव नहीं है।

संस्कृति तथा व्यक्तित्व

व्यक्तित्व निर्धारण का तीसरा प्रमुख कारक संस्कृति है। प्रत्येक व्यक्ति जन्म के बाद किसी न किसी समूह अथवा समाज के सम्पर्क में आता है। जो किसी न किसी संस्कृति को धारण किये हुए है। संस्कृति एवम् व्यक्तित्व के सम्बन्धों को दो रूपों में देखा जा सकता है :

(१) संस्कृति व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

(२) व्यक्तित्व संस्कृति का निर्माण करता है।

प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति में जन्म लेता है और वह पूर्व निर्मित सांस्कृतिक पर्यावरण में प्रवेश करता है। व्यक्ति संस्कृति के भौतिक पक्षों को ही नहीं अपनाता वरन् उसके अभौतिक पक्षों जैसे-धर्म, रीति-रिवाज, नियम, आदर्श, मूल्य, ज्ञान, विश्वास आदि को भी अपनाता है। इन सभी का व्यक्तित्व निर्माण पर प्रभाव पड़ता है।

संस्कृति ही व्यक्ति को एक विशेष ढंग से व्यवहार करना सिखाती है। सांस्कृतिक भिन्नता के ही कारण एक समाज के व्यक्तित्व के लक्षण दूसरे समाज से भिन्न होते हैं। जैसे- जापानी कानून को मानने वाले होते हैं, भारतीय धर्मप्रिय होते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है जो दूसरे समाज से भिन्न होती है, तथा प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति की उपज होता है। एक संस्कृति की झाँकि हम उस समाज के लोगों के व्यवहारों एवम् व्यक्तित्व में देख सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति प्राय: अपनी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक संस्कृति में भौतिक एवम् अभौतिक पक्ष (रीति-रिवाज, प्रथाएं, मूल्य, आदर्श, नैतिकता, विचार, विश्वास) प्राप्त होते हैं जो व्यक्ति के समाजीकरण एवम् व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति के कुछ विशिष्ट गुण जैसे कष्ट सहने की क्षमता, सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना, यौन नैतिकता, असामान्य व्यवहार, प्रेम, स्नेह, स्त्री - पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध आदि संस्कृति द्वारा ही तय होते हैं।

संस्कृति एवम् समाज

व्यक्तित्व एवम् संस्कृति की भांति संस्कृति एवम् समाज में भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। यहां तक कि कई बार इन दोनों को एक ही समझ लिया जाता है। संस्कृति लोगों की जीवन विधि है, जब कि समाज

विशेष व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो एक प्रकार की जीवन विधि का अनुपालन करता है। एक समाज का निर्माण लोगों से होता है और जिस प्रकार से व्यवहार करते हैं वह उनकी संस्कृति है। इस प्रकार दोनों का अभिन्न सम्बन्ध है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सभ्यता, संस्कृति, व्यक्तित्व और समाज सभी का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृति व्यक्तित्व निर्माण में योग देती है तो व्यक्तित्व भी संस्कृति को दिशा प्रदान करता है। समाज व्यक्ति के " स्व " के निर्माण में प्रमुख भूमिका अदा करता है, उसका समाजीकरण करता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति के व्यवहार को देखकर ही उसकी संस्कृति एवम् समाज की पहचान की जा सकती है।

डा० लाल के नाटकों में संस्कृति समाज एवम् व्यक्तित्व

संस्कृति, समाज एवम् व्यक्तित्व परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। एक दूसरे के बिना उनका अस्तित्व सम्भव ही नहीं है। सामाजिक मनुष्य इन तीनों का रचक है। मनुष्य के द्वारा ही संस्कृति, समाज एवम् व्यक्तित्व की रचना होती है, पर इन तीनों के बिना सामाजिक मनुष्य का भी अस्तित्व सामने नहीं आ सकता। एक प्राणिशास्त्रीय जीव एक सुसंस्कृत समाज में पलकर ही एक सामाजिक प्राणी बनता है।

नाटक मानव द्वारा मानव की निर्मित हुई एक सचित्र प्रदर्शनी है। इसमें नाटककार मंच पर अनेक प्रकार के चरित्रों को प्रदर्शित करता है। मूलरूप से नाटक की एक सुसंस्कृत एवम् सामाजिक प्राणी के मन की ही उपज है। नाटक जन समुदाय के लिए बहुत ही हितकारी साधन है। इसके माध्यम से नाटककार समाज की अच्छाईं एवम् बुराई दोनों को प्रदर्शित करता है। नाटक में प्रदर्शित अच्छे - बुरे कार्यों के परिणामों से जन-मानस प्रभावित होता है। नाटककार नाटक के माध्यम से अन्य संस्कृतियों को भी प्रदर्शित करके लोक-मानस को व्यापक संस्कार देता है।

नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक युग के नाटककार हैं। समय के दृष्टिकोण से उनका रचनाकाल स्वतन्त्रता के बाद का है। पर स्वतन्त्रता के पूर्व के भी कुछ संस्कार डा० लाल में अवश्य ही दिखलायी पड़ते हैं। एक युग के अन्त और दूसरे युग की शुरुआत के मध्य के साहित्यकारों की मानसिक स्थिति दुविधामूलक रहती है, पर डा० लाल का साहित्यिक विकास बहुत ही स्पष्ट है।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य कथा बहुरूपी है। ये नाट्य जगत के ऐसे भ्रमर हैं जिन्होंने एक ही डाल पर बैठकर सम्पूर्ण मकरन्द इकट्ठा नहीं किया है। डा० लाल अनेक डालों पर घूम- घूमकर (अनेक पौधों से विषय ग्रहण कर) कलियों से सुन्दर रस ग्रहण किये, और एक सुनाट्य शृंखला के जन्मदाता बने। इनकी नाट्य कथा ऐतिहासिक,

पौराणिक, राजनैतिक, सामाजिक एवम् दार्शनिक जगत से सम्बन्ध रखती है। मूलरूप से इनके पात्र ग्रामीण एवम् पाश्चात्य संस्कृति में रंगे हुए आधुनिक संस्कृति के हैं। अंधा कुआं, सूखा सरोवर, तोता- मैना, सुन्दर रस आदि नाटक ग्रामीण पात्रों से सुसज्जित है। करफ्यू, अब्दुल्ला दीवाना, रक्त कमल, राजरानी आदि नाटक भारतीय संस्कृति को अपने अन्दर संजोये हुए हैं। डा० लाल ने भारतीय संस्कृति के रूढ़िवादी पक्ष की खुलकर आलोचना की है। मूलरूप से डा० लाल ने धर्म एवम् जातीय स्थिति की आलोचना की है। जाति व्यवस्था पर आधारित खान-पान, विवाह, छुआछूत आदि का खण्डन करना उनके नाटकों का प्रमुख विषय प्रतीत होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि डा० लाल वर्ण व्यवस्था को अस्वीकार करते हैं। डा० लाल का रचनात्मक पक्ष भी प्रभावकारी है। वे सम्पूर्ण धरातल पर एक जाति, एक धर्म के समर्थक प्रतीत होते हैं। पर विवाह, खान-पान, रहन-सहन, आदि का आलोचना करते हुए अन्ततः उनका सांस्कृतिक समर्थन भी करते रहते हैं। उन्होंने अनिष्टकारी एवम् विघटन पैदा करने वाले तथ्यों को विशेष रूप से जन-मानस पर अंकित करने की कोशिश की है। साथ ही डा० लाल ने एक सुन्दर व्यवस्था की तरफ भी जन-मानस को आकर्षित करने में समर्थ दिखाई पड़ रहे हैं।

(1) <u>दाम्पत्य का वैदीय पक्ष : भारतीय संस्कार :</u> हमारी भारतीय संस्कृति

बहुत ही महान् है। इसमें यहां पर उसके अलौकिक पक्ष पर विचार करेंगे। भारतीय संस्कृति में पति- पत्नी का सम्बन्ध ईश्वर तुल्य माना जाता है। पत्नी, पति के साथ सात फेरे डालकर अग्नि देवता के समक्ष जीवन भर साथ रहने की कसम खाती है। वे दोनों एक दूसरे के कार्यों में सहयोग करते हैं। साथ ही इन दोनों में से किसी की भी अनुपस्थिति से एक दूसरे के अस्तित्व को खतरा पैदा हो जाता है। `करफ्यू` नामक नाटक में डा० लाल ने इस भावना को कविता देवी के माध्यम से जन-मानस के समक्ष उपस्थित किया है।

> कविता : हां एक पुरुष उसके सब अर्थों में। पुरुष
> जिसके बिना स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं पुरुष
> जिसकी चाह हर स्त्री अपनी आत्मा में पालती है,
> पुरुष जिसकी गोद ही प्रत्येक स्त्री की मुक्ति है।[१]

पत्नी का कार्य पति के कार्यों में सहयोग करना ही था। उसके बुरे कार्यों में भी वह उसे बुरा नहीं कहकर उसमें हाथ बटाया है। नाटक `अंधा कुआं` और `लंकाकाण्ड` इस भावना को दर्शाते हैं। `सूका` भगौती की पत्नी है। भगौती उसे अनेक प्रकार से प्रताड़ित करता है, परन्तु वह उसके साथ ही रहकर उसकी सेवा करती है।

१- करफ्यू, पृ०- ६४

दूसरी औरत : बुका दीदी का ही दिल है कि यह इतने पर भी आप भगौती को डूबने से बचा रही है।[1]

इसी प्रकार "लंकाकाण्ड" में मोहन के द्वारा गौरा ऐसी प्रताड़ित होती है। अनेक कष्ट प्राप्त करने के बावजूद वह मोहन को अपने से अलग नहीं समझ रही है। साथ ही प्रतिपल उसकी रक्षा करने को तत्पर रहती है और यह भी कह उठती है-

मोहन : क्यों अपनी बेइज्जती कराती हो ?

गौरा : मेरी इज्जत तुम्हीं हो।[2]

(2) <u>बदलाव की दिशा :</u> प्राचीन युग की नारी निरन्तर पुरुषों के अत्याचार सहती चली आ रही थी। परन्तु सहन की कोई सीमा होती है। आज का नारी जगत् इस अत्याचार को सहन करने के लिए तैयार नहीं है। वह भी पुरुष वर्ग से समानता का अपना अधिकार मांग रही है। वह नवीन रूप में अवतरित हो रही है। वह मनुष्य के इस शोषण पूर्ण कार्य से ऊब चुकी है। डा० लाल ने भी नारी के इस सहनशील व्यक्तित्व को भी बहुत जल्दी उखाड़ फेंका है। इसके बदले में आज की नारी व्यक्ति से अपना प्रतिशोध भी ले रही है।

१- अंधा कुआँ, पृ०- १११

२- लंकाकाण्ड, पृ०- ३०

स्वयं ही धन उपार्जन करके, स्व जीविका निर्वाह कर रही है। लंकाकाण्ड की गौरा वैसी प्राचीन आडम्बरपूर्ण घूंघट को उतार फेंकती है और नवीन नाम, वेश ग्रहण करके ललिता के रूप में अवतरित होती है। इस रूप को देखकर उसका पति तथा उसके पड़ोसी पहलवान, सिपाही आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। यह सत्य है। आज के नारी जगत को भी देखकर लोग हैरान हैं। वह पुरुष को मार्ग निर्देशन के साथ स्वशासन में भी रखना चाहती है :

> ललिता : क्यों ? क्या कर रहे थे अब तक ? कहां थे ? बोलते क्यों नहीं ? इधर आओ। चलो इधर। (बढ़ती है) मुंह खोलो। सांस लो। मुंह बन्द करो।[1]

इस प्रकार आज का नारी जगत पुरुष जगत पर अपनी छाप अंकित कर रही है। उसी के ही निर्देशन में अधिकांश जीवन-क्रियाकलाप आगे बढ़ रहे हैं। वह यहां तक ही रुक नहीं जाती है। अपने पति(मोहन) के छोटे भाई से अपने अधिकार की भी मांग करती है :

> सोहन : चाहती क्या हो ?
>
> ललिता : अपना अधिकार।[2]

१- लंकाकाण्ड, पृ०- ५१

२- - वही - पृ०- ५६

(२) स्त्री - पुरुष की समता : डा० लाल का व्यक्तित्व भारतीय संस्कारों की प्रधानता को ही स्वीकार करता है। " लंकाकाण्ड " तथा " पर्दे के पीछे " नामक नाटक में वे पुरुष प्रधानता को ही स्वीकार कर समझौता करा देते हैं। मूलत: डा० लाल की मानसिकता है- " स्त्री - पुरुष समाज रूपी रथ के दो पहिए हैं। " इसी भावना को स्वीकार करता है। मोहन स्वयं पश्चाताप के प्रार्थना करने के उपरान्त दोनों पक्ष समझौतावादी दृष्टिकोण अपना लेते हैं। गौरा देवी (लतिका) मोहन को भी विवाह के समय का मोहन हो जाने के लिए प्रार्थना करती है तथा मोहन भी लतिका से गौरा देवी हो जाने के लिए।

लतिका : मैं अब बातों में आने की नहीं। मैं अब इस तरह
जिन्दा नहीं रह सकती।

मोहन : अच्छा आखिरी बार --- आखिरी बार -----
लेकिन एक शर्त है, तुम वही गौरा हो जाओ जिसे
पहले मैंने कभी नहीं देखा था।

लतिका : एक शर्त पर तुम वही मोहन हो जाओ गौरा से
विवाह के पहले का मोहन।[१]

१- लंकाकाण्ड, पृ०- ७८ - ७९

इस प्रकार डा० लाल पति - पत्नी को एक दूसरे के सहयोगी रूप में ही देखना चाहते हैं। उनके अनुसार पति- पत्नी को एक दूसरे पर बराबर का अधिकार है। जब तक यह दोनों आपस में मिलकर आगे बढ़ेंगे तभी तक यह समाज सुसंगठित बना रहेगा। अन्ततः गौरा देवी और मोहन के बीच समझौता करवा ही देते हैं।

---- आओ देखो ---- देखो, सब लोग मोहन को, मोहन की गौरा को।[1]

(५) <u>नारी स्वतन्त्रता :</u> आज के वैज्ञानिक युग में नारी पुरुषों के समान ही स्वतन्त्र है। वह केवल घर की चारदीवारी में ही बंधी नहीं रहना चाहती है। पुरुष वर्ग भी उसे स्वतन्त्र छोड़ने को उत्सुक है।

कविता : स्त्री घर में रहती है।

गौतम : दुनियाँ उसके बाहर है।

कविता : उसकी दुनियाँ यही है।

गौतम : किसने कहा।

कविता : किसी ने नहीं, यही उसका स्वभाव है।

गौतम : तुम्हें कब मैंने रोका।[2]

१- लंकाकाण्ड, पृ०- ७५

२- कर्फ्यू, पृ०- ९९

४ <u>विवाह : सम्बन्ध में नवीनता :</u> विवाह के सम्बन्ध में भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि एक जाति का विवाह उसी जाति में हो सकता है। नाटक "कैद से पहले" में जमुना देवी अपने को इस व्यवस्था से टूटकर भी अपनी बेटी के लिए इस व्यवस्था को सम्पन्न करने के लिए जान देने को तैयार है।

> जमुना : नहीं दीवान साहब, ऐसा नहीं, मैं उसका जीवन बहुत पवित्र देखना चाहती हूं। अपने ही गोत्र में उसकी शादी होगी नहीं तो मुझे सीधे नरक में जाना होगा।[1]

आधुनिक परिवेश में विवाह- सम्बन्ध की पूर्व विचारधारा में परिवर्तन हो रहे हैं। डा० लाल अपने अधिकांश नाटकों में जैसे- (नयी इमारतें, दर्पन, पर्वत के पीछे आदि।) नवीन परम्परा से रंगे हुए दिखते हैं। नाटक "नयी इमारतें" में "डाक्टर प्रभा" किसी की हालत में अपनी बेटी रीता व गीता का विवाह सुनील के साथ करना चाहते हैं। उनके लिए भारतीय संस्कृति (गोत्र - जाति विचार) कुछ नहीं है। मात्र आर्थिक कारण स्पष्ट है। यही आज के नवीन समाज की विशेषता है।

<u>"पर्वत के पीछे"</u> नामक नाटक में अंबालि मदन के साथ पिता

१- कैद से पहले, पृ०- २७७

पिता की अनुमति के बगैर चली जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सम्बन्ध स्थापना में पिता की सर्वोच्च भूमिका में ह्रास ही हुआ है। अब प्रत्येक पक्ष (लड़का - लड़की) इस सम्बन्ध स्थापना में स्वतन्त्र सा होता जा रहा है। और पितृपक्ष तड़प रहा है-

> राजीव : इस तूफानी अंधड़ में मेरी अंजी न जाने कहां होगी ? इस घुप अंधेरे में उसे रास्ता नहीं दिखता होगा ------ मैं तुम्हें इस खिड़की से पुकारता हूं अंजी। चली आ मेरी बेटी ---- ।[१]

⑥ <u>जातीय संस्कार :</u> इस सामाजिक तथ्य को सभी लोग स्वीकार करते हैं कि जिस प्रकार के समाज में जीव पलेगा उसी प्रकार का व्यक्तित्व धारण करेगा। यथा भारतीय जातीय संस्कारों में पला प्राणिशास्त्रीय व्यक्ति अपनी जाति के अनुसार ही व्यक्तित्व धारण करेगा। नाटक 'कैद से पहले' में जमुना देवी विशेष रूप से जातीय व्यवस्था की हिमायती प्रतीत होती है :

सूबेदार : ---- सागर ---- तुम्हें खूब मालूम है कि जमुना ने सीता के भोजन का प्रबन्ध अलग किया है (क्योंकि वह ब्राह्मण की लड़की है)।

सागर : जी हां, माता जी तो कहती थीं कि मैं अपनी

१- पर्वत के पीछे, पृ०- ५४

बेटी को बेघरम नहीं होने दूंगी ।[1]

नाटक `रक्त कमल` में भी डा० लाल ने व्यक्ति, समाज एवम् व्यक्तित्व के बीच सम्बन्ध को पूर्णरूपेण स्वीकार किया है। `कमल` के माध्यम से वे अपने विचार प्रस्तुत करते हैं-

कमल : समाज और व्यक्ति दोनों सत्ताएं अलग - अलग नहीं हैं। जीवन समाज और व्यक्ति ये तीनों उसी प्रकार हैं जैसे हमारी एक ही सत्ता में शरीर, प्राण और आत्मा ।[2]

डा० लाल के नाटक `लंकाकाण्ड` का मोहन अपने शराब पीने का कारण अपने पिता द्वारा रचित सामाजिक परिवेश को देता है।

मोहन : मेरे साथ पहला विश्वासघात मेरे बाप ने किया। वह लोगों को घर बुलाकर घूस देता था। खुद शराब नहीं पीता था पर लोगों को अपने हाथ से पिलाता था------ जिसका पिता ऐसा होगा उसका बेटा कैसा होगा ।[3]

१- केंद से पहले, पृ०- ११२

२- रक्तकमल, पृ०- ७४

३- लंकाकाण्ड, पृ०- १३- १४

⑨ पुरुष प्रधानता : नारी के सम्मान का प्रश्न : इस भारतीय समाज में लड़की होना अभिशाप बन गया है। प्रत्येक व्यक्ति बेटे से ही अत्यधिक प्यार करता है। एक माँ सैकड़ों लड़कियां होने के बावजूद अपने जीवन उद्देश्य की प्राप्ति में अपने को असफल ही समझती है। डा० लाल के नाटक " सुबह होगी " में एक स्त्री जिसके पास कोई भी सन्तान नहीं है, "आनन्द " उसे एक बच्चा (लड़की) (जो झाड़ी में पड़ा था) देता है। वह उसे लड़की जानकर अस्वीकार कर देती है।

आनन्द : क्यों माँ! आप बच्चे से दूर क्यों चली गयीं।

औरत : सब बातों के साथ - साथ यह लड़की भी तो है।[1]

इसके साथ ही नवीन विचारधारा का पोषक व्यक्ति जनमानस को आन्दोलित करना चाहता है। वह चाहता है कि नारी जगत को उच्च सम्मान मिले। " नाटक " सुबह होगी " में डा० लाल ने इस नई सुबह की कल्पना भी है कि नारी भी ससम्मान इस समाज में रह सके।

आनन्द : (गिड़गिड़ाकर प्रार्थना स्वर में) मैं हाथ जोड़ता हूं माँ। उन सब बातों को भूल जाइये सिर्फ यही इतना याद रखिए कि यह एक पवित्र आत्मा है निष्कलंक। न इस पर किसी जाति की छाया है, न किसी संस्कार की सीमा----- इसे अपनी गोद में शरण दो माँ। यह अपना नन्हा सा

१- सुबह होगी, पृ०- ७७

हाथ जोड़कर आपसे जीवनदान माँग रहा है ।[1]

इस प्रकार डा० लाल इस पुरूष प्रधान समाज से नारी के सम्मान अधिकार के लिए प्रयत्नशील है । यह उचित ही है कि प्रत्येक समाज को इस विभेद को दूर कर देना चाहिए, तभी सम्पूर्ण विकास सम्भव हो सकता है ।

डा० लाल के " अंधा कुआँ, " तोता - मैना, " " राम की लड़ाई " जैसे नाटक प्राचीन समाज का प्रदर्शन करते हैं । प्राचीन समाज का प्रदर्शन करते हैं । प्राचीन समाज व्यवस्था कैसी थी इसका साक्षात्कार ये नाटक कराते हैं । साथ ही दूसरे तरफ " रातरानी," "करफ्यू ", आदि नवीन व्यवस्था के परिचायक हैं । ये नवीन प्रवृत्ति-मूलक नाटक नवीन समाज बनाने की प्रेरणा प्रदान करते हैं । साथ ही विवेचन का भी कार्य उत्तम रूप से करता है ।

(ह) <u>समाजीकरण : परिवार स्नेह :</u> समाजीकरण की प्रक्रिया सर्वप्रथम परिवार से ही प्रारम्भ होती है । प्राणीशास्त्रीय जीव का सर्वप्रथम उद्भव एक परिवार में होता है । परिवार में उसके माता-पिता एवम् बन्धु बान्धव होते हैं । बच्चे को इन सभी लोगों से विशेष प्रकार के व्यवहार प्राप्त होते हैं । माता - पिता का प्यार बच्चे को अविरमत रूप से आकर्षित किये रहता है । माँ की गोद में पलता हुआ

१- सुबह होती, पृ०- ७६

बच्चा अनेक प्रकार की क्रीड़ाएं करता हुआ प्राप्ति करता है। " पर्दे के पीछे " नामक नाटक में डा० लाल ने पिता और पुत्री के बीच एक अद्भुत प्यार की झलक को दिखायी है।

राजीव : (प्यार से पास आकर) ओ मेरी लाड़ली ।
तू मेरी नन्हीं सी बेटी तो है।[१]

यही प्यार - दुलार उस प्राणिशास्त्रीय जीव को भी चित रखने के लिए अति आवश्यक है। व्यक्ति जिस प्रकार अधिक उम्र को प्राप्त होता वैसे - वैसे समाज के गुणों को सीखता जायेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार समाजीकरण का प्रथम एवम् सबल आधार है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। नाटक " सुबह होनी " इस तथ्य को प्रस्तुत करता है। आनन्द और चेतन रास्ते में गुजरते हुए एक अज्ञात शिशु को प्राप्त करते हैं। आनन्द उस बालक को गोद में उठा लेता है। चेतन इस बात को बुरा मानता है। पर आनन्द इस जीव की महत्ता एवम् असमय मृत्यु की दुर्घटना को समझ रहा है। वह कहता है कि बच्चा जन्म से केवल एक रक्त और मांस का लोथड़ा होता है। सभी गुण तो उसे समाज से ही प्राप्त होते हैं। इसी कारण वह मां से हाथ जोड़कर इस बच्चे को गृहण करने के लिए प्रार्थना कर रहा है।

१- पर्दे के पीछे, पृ०-

आनन्द : (गिड़गिड़ाकर प्रार्थना स्वर में) मैं हाथ जोड़ता हूं मां । उन सब बातों को भूल जाइये सिर्फ यही इतना याद रखिये कि यह एक पवित्र आत्मा है । निष्कलंक ------ यह अपना नन्हा-सा हाथ जोड़कर आपसे जीवनदान मांग रहा है --- ।[१]

(६) सांस्कृतिक पर्यावरण : नारी की निर्भरता : भारतीय समाज में स्त्री की बहुत ही दयनीय दशा रही है । डा० लाल विशेष रूप से स्त्री जगत से परिचित दिखाई पड़ते हैं । सांस्कृतिक पर्यावरण की बात करते हुए डा० लाल ने भारतीय समाज में पति - पत्नी के सम्बन्धों की चर्चा की है । भारतीय समाज में नारी को एक विशेष पर्यावरण में पाला जाता है । उसे पति से निम्न रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है । साथ ही उसे इसी प्रकार के गुण सिखाए जाते हैं । नाटक " नयी इमारतें " में मीना के माध्यम से डा० लाल ने स्त्री जगत की मानसिकता को व्यक्त किया है ।

मीना : माफ की जिए यह सब मारी प्रतिक्रिया है----- लेकिन इसमें तुम्हारा कसूर नहीं है गीता । हम पैदा में जन्म से ही औरत को सिखाया ही जाता है ---

---

१- सुबह होगी, पृ०- ७६

> किताबें पढ़ाई जाती हैं कि औरत कमज़ोर है,
> सहनशीलता उसका सौन्दर्य है, पुरुष उसका ईश्वर
> है---- और औरत का अलग कोई अस्तित्व नहीं है।[१]

(१०) <u>ग्रामीण संस्कृति : प्राकृतिक शक्तियों की पूजा :</u> भारतवर्ष ग्राम- प्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या नगरों के अतिरिक्त गाँवों में रहती है। इसी कारण भारतवर्ष में दो प्रकार की संस्कृति पायी जाती है--नागरीय और ग्रामीण। ग्रामीण जनमानस देवी-देवताओं के साथ प्राकृतिक शक्तियों की भी पूजा करता है। नाटक "कश्मीर की घाटियों में" भेलम नदी का जन्म दिन मनाने का वर्णन है, जो हमारी ग्रामीण संस्कृति की उपज है।

> जीवन : ------ इस बार रेशम भी खूब हुई है। हां कल
> भेलम नदी का जन्म दिन है न काका ?
> बूढ़ा : हाँ बेटा। अब हम भेलम का जन्मदिन बड़े जोरों
> से मनायेंगे।[२]

(११) <u>सैनिक समाज :</u> प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है। उस समाज का प्रत्येक व्यक्ति उसका प्रतिनिधित्व करता है। सैनिक समाज

१- नयी इमारतें, पृ०-१९५
२- कश्मीर की घाटियों में, पृ०- ६

एक विशिष्ट समाज है। इस समाज पर देश एवम् प्रशासन का बोझ रहता है। प्रत्येक सैनिक समाज राजसम्मान को स्वीकार करता है। इसके साथ ही दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ उसका पालन भी करता है। यहां पर डा० लाल ने ऐसी एक दृढ़ प्रतिज्ञ समाज की रचना की है।

पुरूरवा : (सम्हालता हुआ) यह नहीं होगा।
कभी नहीं
यह असम्भव है।। (राजमाता को बुलाता है)
सुधि में आओ राजमाता
मैं दे रहा हूं वचन
चरणों में तुम्हारे
प्रतिश्रुत हो रहा हूं
राजमाता
यह नहीं होगा ---- ।[1]

राजधर्म एवम् राजसिंहासन की रक्षा करना सैनिक समाज का परम कर्तव्य होता है। उपर्युक्त उद्धरण में " पुरूरवा " इसी कर्तव्य के प्रति आस्था एवम् विश्वास व्यक्त कर रहा है। वह राजमाता के समक्ष वचन देता है।

समाजशास्त्रियों की धारणा है कि प्राणिशास्त्रीय जीव

१- सूखा सरोवर, पृ०- ७८

जिस प्रकार के समाज में अवतरित होता है, उसी समाज का अन्न -जल, वेशभूषा, संस्कार आदि को धारण कर लेता है। वह अपने समाज का प्रतिनिधित्व करता है। यदि किसी भारतीय समाज में पले व्यक्ति को पाश्चात्य समाज में रख दिया जाय, तो भी वह अपने मूल संस्कारों (भाषा, रहन- सहन --- ।) को कभी भी भूल नहीं सकता है। डा० लाल ने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया है। उन्होंने अपने नाटक " मिस्टर अभिमन्यु " में एक मछली का उदाहरण दिया है। प्रारम्भ में वह मछली एक शीशे के टब में पाली जाती है। बड़ी हो जाने पर उसे एक तालाब में छोड़ दिया गया। मछली की सीमा तो उस टब के शीशे की दिवार ही थी। उसी सीमा में पली मछली जीवन पर्यन्त उसी घेरे की सीमा को स्वीकार कर लेती है।

बाबा : उस मछली जैसी घटना जो एक शीशे के टब में कैद कर दी गयी थी। कई बार सिर पटकने के बाद उसकी समझ में आया कि यह शीशा पानी नहीं है। बाद में उसे एक तालाब में डाल दिया गया लेकिन उसे यह सोचने की हिम्मत नहीं हुई कि यह शीशा नहीं पानी है। और अपने एक छोटे से दायरे में ही चक्कर लगाने लगी।[1]

१- मिस्टर अभिमन्यु, पृ०- ५१

इस प्रकार निष्कर्षत: यही कह सकता हूं कि संस्कृति, समाज एवम् व्यक्तित्व का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। वर्तमान समय में हमारी संस्कृति बदलाव के स्तर से गुजर रही है। इस पर पाश्चात्य जगत का प्रभाव असर करता दिखायी पड़ रहा है। डा० लाल भी भारतीय एवम् पाश्चात्य संस्कृति के सामंजस्य को लेकर विशेष रूप से प्रयत्नशील है।

अष्टम् अध्याय

अष्टम् अध्याय— व्यक्ति तथा समाज

अरस्तू का यह कथन पूर्णतः सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसमें अपने साथियों के साथ सामान्य रूप से जीवन व्यतीत करने की क्षमता पायी जाती है। ऐसा माना जाता है कि जो मनुष्य अपने साथियों के साथ सामान्यतः सहयोग करता हुआ सामान्य जीवन व्यतीत नहीं कर पाता, वह या तो देवता है या फिर पशु। मनुष्य का प्रारम्भ से लेकर आज तक का इतिहास बताता है कि वह समूह या समाज में ही रहता आया है, सामूहिकता उसका विशेष गुण है। वास्तव में व्यक्ति की समाज के बिना और समाज की व्यक्ति के बिना कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव जीवन के प्रमुख दो आधार हैं :

(१) प्राणीशास्त्रीय आधार

(२) सामाजिक आधार

जन्म के समय बालक एक प्राणीशास्त्रीय इकाई मात्र होता है। वह अपने समाज, संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाज, प्रथा, परम्परा, मूल्य, आदर्श प्रतिमान आदि के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता है। वह सब कुछ वह अन्य लोगों के साथ रहकर, सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करके, उनके साथ सामाजिक अन्तःक्रिया करता हुआ समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखता है। स्पष्ट है कि व्यक्ति और समाज के बीच घनिष्ठ

सम्बन्ध पाया जाता है ।

वास्तव में देखा जाय तो मनुष्य की सामाजिक प्रकृति उसकी मौलिक विशेषता है । यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि मनुष्य किस-किस दृष्टि से एक सामाजिक प्राणी है । किस दृष्टि से हम समाज से सम्बन्धित और किस दृष्टि से समाज हमसे सम्बन्धित है । हम समाज पर किस प्रकार निर्भर हैं । इन सब प्रश्नों के मूल में एक ही प्रश्न है और वह है— व्यक्ति का समाज के साथ क्या सम्बन्ध है ?

व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद पाया जाता है । प्रसिद्ध दार्शनिक हाब्स, लाक, रूसो ने सामाजिक समझौते के सिद्धान्त पर अपना मन्तव्य प्रकट किया है ।

(१) सामाजिक समझौते का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रारम्भ में मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में रहता था । वह प्रकृति पर आश्रित था और उसी की सहायता से अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था । इस अवस्था में जनसंख्या के बढ़ने एवम् स्वामित्व की भावना के पैदा होने के परिणाम स्वरूप व्यक्तिवादिता को प्रोत्साहन मिला । इस प्रकार एक समूह (अधिक भूमि का स्वामी) धनीवर्ग, (कम भूमि का स्वामी निर्धन वर्ग) दो भागों में बट गया । अधिकार लिप्सा के कारण दोनों में संघर्ष की भावना

पैदा हो गयी । इन्हीं के अनुसार ऐसी स्थिति से बचने के लिए मनुष्यों ने एकत्रित होकर समझौता किया । इस समझौते के अनुसार प्रत्येक के स्वतन्त्रता की रक्षा की बात की गयी । इसके आधार पर ही निर्मित व्यवस्था को ही समाज कहा गया । इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति ने जानबूझ कर अपनी स्वतन्त्रता एवम् शांति के लिए समाज की स्थापना की ।

(२) सावयवी सिद्धान्त

दूसरा सिद्धान्त " सावयवी सिद्धान्त " है । यह समाज से पृथक् व्यक्ति का अस्तित्व नहीं मानता है । जो कुछ है वह समाज ही है व्यक्ति तो उसका एक कोष्ठ (   ) मात्र है । यथा शरीर के अंगों के साथ रहने से ही अस्तित्व है उसी प्रकार मनुष्य का समाज के साथ ।

(३) सामूहिक मन का सिद्धान्त

तीसरा सिद्धान्त " सामूहिक मन या मस्तिष्क का सिद्धान्त है । विद्वानों के अनुसार व्यक्ति के मन या मस्तिष्क के समान समाज का भी एक मन होता है जिसे सामूहिक मन कहा गया है । जैसे व्यक्ति अपने लिए सोचता है उसी प्रकार सामूहिक मन पूरे समाज के लिए सोचता है । इस सिद्धांत के समर्थकों ने व्यक्ति के मन या मस्तिष्क का "सामूहिक मन"

से पृथक् कोई महत्व या अस्तित्व नहीं स्वीकार किया है। इस सिद्धांत के समर्थकों के अनुसार समाज स्वयं ही एक मन है, एक ऐसा मन जो उसके सभी सदस्यों में सामान्य है।

समाजशास्त्रियों की धारणा है कि तीनों सिद्धांत अपूर्ण, अप्रमाणिक एवम् दोषयुक्त है। इनके आधार पर व्यक्ति व समाज के सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। वास्तविकता यह है कि व्यक्ति और समाज के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। एक को दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति के बिना समाज की और समाज के बिना व्यक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। दोनों में पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है।

(४) <u>व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्ध(पारस्परिक निर्भरता)</u>

व्यक्ति और समाज दोनों ही पारस्परिक रूप से एक दूसरे पर निर्भर है। दोनों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। जिस प्रकार सैनिक के बिना सेना की कल्पना नहीं की जा सकती, विद्यार्थी के बिना कक्षा, उसी प्रकार व्यक्तियों के बिना समाज की भी कल्पना नहीं की जा सकती है।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यक्तियों का ही महत्व है और परिवार और समाज का कुछ महत्व नहीं है। व्यक्ति और समाज को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है इन दोनों में केवल दृष्टिकोण का अन्तर है। यदि हम सामाजिक जीवन की भिन्न-भिन्न इकाइयों पर विचार करते हैं तो यहां हमारा अर्थ व्यक्ति से है और यदि विभिन्न इकाइयों से निर्मित सम्पूर्ण सामाजिक जीवन पर विचार करते हैं तो उस समय हमारा अर्थ समाज से है। व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्धों को समझने के लिए हम सर्वप्रथम देखें कि व्यक्ति पर समाज का क्या प्रभाव पड़ता है और पुन: संस्कृति का निर्माणकर्ता ~~कर्ता~~ व्यक्ति, समाज को कैसे प्रभावित करते हैं।

(५) व्यक्ति पर समाज का प्रभाव

व्यक्ति की समाज पर निर्भरता व्यक्त करने के लिए मैकाइवर व पेज ने तीन आधार पर सिद्ध की है। प्रथम समाज से पृथक् रहने वाले बच्चों (कमला और अमला, बालक अन्ना, इसाबेला, राम, भेड़िया) के उदाहरण द्वारा सिद्ध किया है कि समाज के बिना मनुष्य सामाजिक प्राणी नहीं बन पाता है, वह केवल पशु के समान ही बना रहता है। द्वितीय व्यक्ति के आत्म (Self) का विकास समाज में ही होता है।

आत्म का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के स्वयं के प्रति और उसके प्रति दूसरों के क्या विचार हैं। दूसरे उसके प्रति क्या सोचते हैं, क्या विचार बनाते हैं। उन्हीं विचारों के आधार पर व्यक्ति अपने स्वयं के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में धारणा बनाता है। मनुष्य आत्म के विकास के कारण ही एक पशु से सामाजिक प्राणी बनता है। मनुष्य अन्य लोगों के साथ रहकर, विभिन्न समूहों का सदस्य बनकर समाज में व्यवहार करना सीखता है। यहीं वह जान पाता है कि उससे किस प्रकार के व्यवहार की आशा की जाती है, उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए। वह परिवार में बड़ों का अनुकरण करता है और उनके ही तरह की भूमिका निभाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार अन्य लोगों के बीच ही बालक का आत्म विकास होता है। समाज के बिना सामाजिक प्राणी बनाना असम्भव है।

तृतीय आधार व्यक्ति की सामाजिक विरासत पर निर्भरता है। वास्तव में मनुष्य सामाजिक विरासत की देन है। सामाजिक विरासत के साथ हमारा सम्बन्ध बीज के जमीन के साथ सम्बन्ध से भी अधिक घनिष्ठ है। सामाजिक विरासत के आधार पर ही हमारे विश्वास, मूल्य, प्रवृत्तियाँ आदि बनते हैं। इसी के आधार पर हम अपने समाज की परम्पराओं, प्रथाओं और आचरण सम्बन्धी नियमों से परिचित होते हैं।

व्यक्ति की उचित - अनुचित की धारणा भी सामाजिक विरासत के आधार पर बनती है। हम आज जो कुछ जानते हैं, जो कुछ हमारी संस्कृति है, जो कुछ संचित ज्ञान है, वही तो हमारी सामाजिक विरासत है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के विकास में समाज का अपूर्व योग है, समाज व्यक्ति को अजित रूप में प्रभावित करता है।

(ख) समाज पर व्यक्ति का प्रभाव

जिस प्रकार समाज के बिना व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है, उसी प्रकार व्यक्ति के बिना, समाज का अस्तित्व सम्भव नहीं है। मनुष्यों के बीच ही सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं और समाज का निर्माण होता है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के कारण ही एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, आपस में अन्तःक्रिया करते हैं और सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण करते हैं। ये सामाजिक सम्बन्ध ही तो समाज के आधार हैं। व्यक्ति संस्कृति का निर्माता है। अपने चिन्तन- मनन अनुभव एवम् प्रयत्न के आधार पर संस्कृति का विकास किया है। प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है। कौन-सा समाज कैसा होगा, यह प्रमुखतः उसकी संस्कृति पर ही आधारित है। जिस संस्कृति

का भौतिकवाद की तरफ झुकाव होगा वह समाज उतना ही जटिल होगा। इसके विपरीत जिस संस्कृति का अध्यात्मवाद की तरफ झुकाव होगा वह उतना ही सरल होगा। समाज का स्वरूप बहुत कुछ मात्रा में संस्कृति पर निर्भर करता है, जैसे- जैसे किसी समाज विशेष की संस्कृति बदलती जायेगी वैसे - वैसे वह समाज भी परिवर्तित होता जायेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहां व्यक्ति के लिए समाज आवश्यक है वहां समाज के लिए व्यक्ति की समान रूप से आवश्यकता है। दोनों में पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है। एक के बिना दूसरे का कोई अर्थ नहीं है।

डा० लाल के नाटकों में व्यक्ति और समाज

व्यक्ति और समाज का अस्तित्व परस्पर सापेक्ष है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व किसी भी परिस्थिति में स्थिर नहीं रह सकता। कुछ समाजशास्त्रियों की धारणा है कि समाज ही व्यक्ति का निर्माण करता है। कुछ के अनुसार व्यक्ति ही समाज का सृजन करता है। दोनों पक्ष अपने - अपने सिद्धांत की पुष्टि के लिए प्रमाण देते हैं। वैसे मेरे दृष्टिकोण से व्यक्ति ही महत्वपूर्ण है। क्योंकि जैसे व्यक्ति होंगे वैसा ही समाज होगा, और संस्कृति की गोद भी व्यक्ति

ही देता है। समाज में एक विशिष्ट संस्कृति एवम् सभ्यता का दर्शन होता है। इस सभ्यता और संस्कृति के पीछे व्यक्ति का ही हाथ होता है। प्रथा, परम्परा, लोकरीति- रिवाज का निर्माणकर्ता व्यक्ति ही है। व्यक्तियों द्वारा समय से बनाये गये रास्तों पर ही समाज को चलना होता है।

<u>समाज पर व्यक्ति का प्रभाव : नवीन समाज रचना का उपक्रम:</u>

डा० लक्ष्मीनारायण लाल एक सहृदय नाटककार होते हुए समाज के अंग हैं। इनका प्रभाव व्यक्तित्व निर्माण के साथ ही साथ समाज-निर्माण की तरफ अधिक है। इनके नाटकों के कथानक प्राचीन समाज के उत्स के आधार पर नवीन समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हैं। इनके नाटक पारिवारिक संगठन से लेकर, खान- पान, रहन-सहन, वेशभूषा, विवाह, पति- पत्नी सम्बन्ध, बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा आदि सभी चीजों में नवीनता के परिचायक दिखाई दे रहे हैं। ये ऐसे परिवार के समर्थक हैं जिसमें पति - पत्नी एवम् अविवाहित दम्पत्ति के बच्चे हैं।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल ऐसे परिवार के समर्थक हैं जो प्रेम विवाह के उपरान्त स्थापित होते हैं। साथ ही डा० लाल ने प्रेमपूर्ण

प्रसंगों के उपरान्त ही उत्पन्न बच्चे को भी मान्यता प्रदान करते हैं। ये ऐसे वैवाहिक कर्मकाण्ड के समर्थक हैं जिसमें माता-पिता की भूमिका न होकर केवल लड़के - लड़की ही निर्णय क्या करते हैं। `पर्दे के पीछे` नामक नाटक में पिता अपनी पुत्री के (प्रेम विवाह के उपरान्त) चले जाने के बाद रोते - रोते अपनी नेत्र ज्योति ही खो बैठते हैं। यह नेत्र ज्योति को तिरोहित करना क्या उनके अस्तित्व का मिटना नहीं है। साथ ही, नाटककार बच्चों के ऐसे पालन - पोषण की चर्चा करता है जिसमें माता - पिता की भूमिका न होकर नौकर नौकरानी की भूमिका दिखाई पड़ती है। डा० लक्ष्मी नारायण लाल स्त्रियों को आर्थिक रूप से स्वतन्त्र करने के पक्ष में हैं। उनके नाटकों में स्त्रियाँ गारमेन्ट कम्पनी की स्थापना करती हैं, कार्यालय में नौकरी करती हैं आदि। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि डा० लाल व्यक्ति के महत्व को समाज की अपेक्षा अधिक स्वीकार करते हैं। डा० लाल व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करते हुए नवीन समाज की रचना करने के पक्ष में हैं।

<u>व्यक्ति का महत्व</u> : व्यक्ति के द्वारा ही प्रथा, परम्परा, रीति - रिवाज का निर्माण होता है जो समाज में आमूल परिवर्तन का कारण बन जाती है। नाटक `रक्त कमल` में व्यक्ति द्वारा व्यक्ति को संस्कारित करने के उपक्रम को दर्शाया गया है। कमल कहता है कि

व्यक्ति, व्यक्ति के जीवन में भाग्य, जाति, फूट का बीज डालकर उसके क्रियाकलापों को प्रभावित किये हुए हैं।

रक्त कमल : देख है, हम, तुम, ये सब लोग यहां की वैतालिस करोड़ अस्सी लाख जनता ------ जिसके रक्त में इतिहास ईश्वर की मर्जी का, भाग्य का, जाति और फूट का बीज डाल गया है।[1]

पुनः इसी नाटक में " कमल " " आस्था " की कमीज में एक ईमानदार अफसर बनाने के लिए सोच रहा है, वहीं दूसरी ओर महावीर अपने बेटे को यह कहकर उसका खण्डन कर देता है :

(महावीर) : नहीं यह किसी की नौकरी क्यों करेगा ?[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में समाज से ज्यादा व्यक्ति का ही हाथ है। डा० लाल ने फ्रायड का इस मत का समर्थन किया है। स्त्री - समाज के बारे में डा० लाल का कथन है कि उन्हें प्रारम्भ से ही ऐसी परिस्थिति में रखा जाता है कि उसके अन्दर ऐसे गुण पैदा किये जाते हैं कि पति को वह समान न मानकर उसे तुल्य माने। साथ ही, पुरुष वर्ग उसे समाज में अपने साथ - साथ आगे

१- रक्त कमल, पृ०- ३१

२- - वही - पृ०- ३५

नहीं बढ़ने दे रहा है ।

नीना : माफ कीजिएगा, यह सब बाहरी प्रतिक्रिया है------ लेकिन इसमें तुम्हारा कसूर नहीं है मीना । ------ इस देश में जन्म से ही औरत को सिखाया जाता है------ किताबें पढ़ायी जाती हैं कि औरत कमजोर है, सहनशीलता उसका सौन्दर्य है, पुरुष उसका ईश्वर है------ औरत का अलग कोई अस्तित्व ही नहीं है------ ।[१]

इसी प्रकार खान - पान, रहन - सहन, पारिवारिक आदि का निर्माण कर्ता समाज न होकर व्यक्ति ही है । नाटक " कैद से पहले " में दीवान और सागर की मां का वक्तव्य द्रष्टव्य है । जमुना जी अपनी बेटी की शादी किसी उच्च ब्राह्मण के यहां ही करना चाहती है । साथ ही उसे अन्य जाति के यहां भोजन भी नहीं करने दे रही है ।

सूबेदार : सागर ------ तुम्हें खूब मालूम है कि जमुना ने सीता के भोजन का प्रबन्ध अलग किया है । (क्योंकि वह ब्राह्मण की लड़की है)[२]

जमुना : नहीं दीवान साहब ऐसा नहीं, मैं उसका जीवन

१- नयी इमारतें, पृ०- ११५

२- कैद से पहले, पृ०- ११२

बहुत पवित्र देखना चाहती हूं। अपने ही गोत्र में
उसकी शादी होगी नहीं तो सीधे नरक में जाना होगा[१]।

व्यक्तिवादी समाज का उदय : तलाक : आधुनिक हिन्दू समाज में व्यक्ति को एक ही पत्नी रखने का अधिकार प्रदान किया गया है। पर आजकल नव-दम्पत्ति के हाथ की मेंहदी अभी सूखी भी नहीं कि तलाक की बात ओठों पर आ जाती है। यह प्रथा समाज में एक भयंकर रोग के रूप में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हो रही है। इस प्रकार प्राचीन समाज (एक पत्नी समाज) इस भावना को रोकने में असफल सिद्ध हो रहा है। पति- पत्नी अपनी - अपनी स्वतन्त्रता की गुहार लगाये हुए हैं। पत्नी - पति के अधीन नहीं रहना चाहती है। पति अपने पुराने उसूलों को छोड़ना नहीं चाहता। अतः टकराव सम्भव है। यही तथ्य डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने नाटक " मोहिनी कथा " में प्रदर्शित किया है। " मोहिनी " " गंगाधर " के पुत्र " कपूर " की प्रथम पत्नी है। वह कपूर के साथ नहीं रहना चाहती है, और स्वयं " कपूर " को पत्र देकर कपूर जी से तलाकनामा पर हस्ताक्षर करने को कहती है। इस तथ्य को कपूर जी भी स्वीकार कर लेते हैं।

१- देव से पहले, पृ०- २०७

कपूर : मोहिनी की यही इच्छा थी कि वह मुझसे अब सदा अलग रहे। उसने मुझे जब साफ लिख दिया था कि मैं तुमसे " डाइवोर्स " चाहती हूं– तो मुझे यह रास्ता ढूंढना पड़ा (रुककर) वह उसी की इच्छा थी, वह उसका आखिरी खत था।[१]

तलाक हो जाने के उपरान्त दोनों एक दूसरे को `कांग्रेचुलेसन्स ` देने भी जाते है। ` सीता ` ` कपूर ` की दूसरी पत्नी है। `महेन्द्र,` `मोहिनी के दूसरे पति हैं। ` महेन्द्र,` ` मोहिनी ` के साथ कपूर के घर आते हैं------

गंगादास : (उठकर) आओ बेटी । यह है सीता----- इधर आओ बेटी, प्रणाम करो------ देखो। मोहिनी बेटी आयी हैं (मोहिनी बढ़कर सीता के प्रणाम लेती है)

महेन्द्र : इन्हीं से मिस्टर कपूर का एंगेजमेन्ट हुआ है ? --- नमस्ते --- (कांग्रेचुलेसन्स ।[२]

यहां पर सामाजिक संस्कृति को बदलने का कार्य स्वयं नारी व्यक्तित्व ही कर रहा है। यह साफ - साफ स्पष्ट है कि संस्कृति

१– मोहिनी कथा, पृ०– ११२

२– – वही – पृ०– २२३

समाज की जान होती है, पर जब संस्कृति का ही नव-निर्माण हो रहा है तब समाज का निर्माण होना सम्भव है। आधुनिक समाज विशेष रूप से परिवर्तनशील दिखाई पड़ रहा है। समाज के रीति- रिवाज, प्रथा, परम्परायें सभी बदल रही हैं। जिस प्रकार के व्यक्ति होंगे उसी प्रकार का समाज होता है। समाज ही व्यक्ति को पूर्णता नहीं प्रदान करता, व्यक्ति ही समाज को पूर्णता प्रदान करता है। यदि उदार विचारधारा के व्यक्ति एक स्थान पर निवास करने लगते हैं तो उदारवादी समाज का निर्माण होता है। भौतिकवादी व्यक्तित्व उभरने लगता है तो जटिल समाज का निर्माण होता है।

<u>भौतिकवाद की प्रधानता : स्वार्थपरता और अहंकार :</u> यही भारतवर्ष जहां पर ऋषि मुनियों की वाणी का आदर होता था, एक ही राजा सभी प्रजा का ईश्वर समान पिता था। उसी भारतवर्ष में भौतिकवादी विचारधारा बढ़ने के कारण अत्यन्त लोभ, माया, अपराध का पाठ बढ़ता चला जा रहा है। इस सात्विक धरती पर लोभी, अहंकारी स्वार्थी, निर्भय, निर्दयी व्यक्तित्व उत्पन्न हो रहा है। अतः यह स्वयं ही स्पष्ट है कि जहां पर इस प्रकार के व्यक्ति निवास करें, क्या उस व्यक्ति समूह को साधु समाज कहा जा सकता है ? नहीं। अतः स्पष्ट है कि व्यक्ति ही समाज की नींव है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण डा० लक्ष्मीनारायण लाल के

'यक्ष प्रश्न' नाटक में देखा जा सकता है। यक्ष भीम के समक्ष प्रश्न उपस्थित करता है। पर भीम स्वार्थ सिद्धि में ही तत्पर दिखाई देते हैं। वे उसके प्रश्नों की परवाह न करके स्वयं ही उससे युद्ध करने लगते हैं और उनका व्यक्तित्व, स्वार्थ, अहंकार के वशीभूत हो जाता है :

यक्ष : मैं भी प्यासा हूं।

भीम : तो मैं क्या करूं।

यक्ष : यही तो।

भीम : तू भाड़ में जा।

यक्ष : इतने स्वार्थी क्यों ?

भीम : अब तुझे दिखाता हूं।

यक्ष : देख रहा हूं।

भीम : एक झापड़ में रसातल।

यक्ष : इतने निर्दयी निर्मम क्यों ?

यक्ष : मैं के अलावा हर कोई शत्रु क्यों ?

भीम : मैं, मैं हूं।

यक्ष : मैं, हम क्यों नहीं ?[१]

१- यक्ष प्रश्न, पृ०- ४६

इस प्रकार व्यक्ति की स्वार्थपरता,अहंभाव एक ऐसे समाज को उखाड़ फेंकने में है जो समरसता और भ्रातृत्व से पूर्ण है। आधुनिक समाज पुन: स्वार्थ और भौतिकतावाद के कारण अपनी प्रथम अवस्था (जंगली अवस्था) को प्राप्त होने की तरफ बढ़ रहा है। इसका उत्तरदायित्व समाज पर नहीं बल्कि व्यक्ति पर है।

व्यक्ति पर समाज का प्रभाव : व्यक्ति का समाजीकरण :

अब प्रश्न उठता है कि क्या व्यक्ति ही सब कुछ है, समाज का अस्तित्व नगण्य है। यह तथ्य पूर्णरूपेण नहीं स्वीकार किया जा सकता है। समाजशास्त्रियों की धारणा है कि प्रारम्भ में जीव एक रक्त मांस का लोथड़ा ही होता है। यदि वह व्यक्ति समाज में दूर चला जाय तो एक सामाजिक प्राणी नहीं बन सकता, यथा : कमला- अमला, रामू भेड़ियां आदि। एक सुसंस्कृत स्वम् सामाजिक प्राणी बनने के लिए बच्चे पर समाज की छाया अति आवश्यक है। बच्चा माता - पिता का प्यार पाता हुआ धीरे - धीरे सामाजिक क्रियाओं को सीख लेता है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। नाटक " मंत के पीछे " में " राजीव " इस क्रिया को सम्पन्न करते हुए कहता है :

राजीव : (प्यार से पास आकर) ओ मेरी लाड़ली !

तू मेरी नन्हीं सी बेटी तो है------।[1]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल समाज और व्यक्ति रूपी दोनों सत्ताओं को अलग - अलग स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं। उनका कथन है कि समाज और व्यक्ति का सम्बन्ध उसी प्रकार है जिस प्रकार शरीर, प्राण और आत्मा का।

कमल : समाज और व्यक्ति दोनों सत्ताएं अलग - अलग नहीं हैं। जीवन समाज और व्यक्ति ये तीनों उसी प्रकार हैं, जैसे हमारी एक ही सत्ता में शरीर, प्राण और आत्मा।[2]

सामाजिक मूल्यों की कैद : इतिहास इस बात का प्रमाण है कि जो भी व्यक्ति समाज के मूल्यों की अवहेलना करता है वह कुछ ही समय में अपने अस्तित्व को खतरे में पाता है। धीरे - धीरे समाज उसके अस्तित्व को मिटाने और अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार समाज का अस्तित्व भी व्यक्ति से कम नहीं माना जा सकता।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया

१- पर्वत के पीछे, पृ०- ४५

२- रक्त कमल, पृ०- ७४

है। डा० लाल ने समाज की तुलना एक शीशे के टब से की है, और जीव की तुलना एक मछली से की है। मछली रूपी जीव की समाज सीमा टब की शीशे की दीवारें हैं। मछली बार-बार बाहर जाना चाहती है, लेकिन उसका सिर शीशे की दीवारों से टकराता है और पुनः वह टब के भीतर चक्कर लगाने लगती है। डा० लाल का कथन है कि शीशे की दीवारें उसके मस्तिष्क में सीमा का रूप धारण कर लेती हैं। इसके उपरान्त भी जब उसे तालाब में डाल दिया जाता है तो भी वह उस दायरे से बाहर नहीं जा पाती है। यही तथ्य सामाजिक प्राणियों के सम्बन्ध में भी लागू होता है। जो व्यक्ति प्रारम्भ से जिस समाज की संस्कृति में पलकर बड़ा होता है, अन्ततः उसी के अनुरूप अपना जीवन-क्रम ढाल लेता है। समाज भी एक प्राणिशास्त्रीय जीव को अपने सामाजिक मूल्यों के अन्दर कैद कर उसका व्यक्तित्व निर्धारण करता है, बड़े होने पर भी वह जीव इस सीमा को लांघकर बाहर जाने की कोशिश नहीं करता है। डा० लाल का नाटक " मिस्टर अभिमन्यु " " बाबा " नामक पात्र के माध्यम से इस तथ्य को व्यक्त कर रहा है :

> बाबा : उस मछली जैसी घटना जो एक शीशे के टब में कैद कर दी गयी थी। कई बार सिर पटकने के बाद उसकी समझ में आया कि यह शीशा पानी नहीं है।

> बाद में उसे एक तालाब में डाल दिया गया, लेकिन
> उसे यह सोचने की हिम्मत नहीं हुई कि यह शीशा
> नहीं पानी है, और वह एक छोटे से दायरे में ही चक्कर
> लगाने लगी । सिर टकराने का भय गहरे संस्कार की
> तरह हमारे दिमाग में छा जाता है ।[१]

मानव के जीवन में सामाजिक मूल्यों का महत्व कम नहीं है । सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही व्यक्ति अपने को समाज में सुचारु रूप से स्थापित करता है । सामाजिक मूल्यों के द्वारा ही व्यक्तियों का महत्व ज्ञात किया जा सकता है । सामाजिक मूल्यों को समाज से बाहर रखकर नहीं अपनाया जा सकता है, जिसका प्रमाण समाज से पृथक रहे अनेक बच्चों के आधार पर सिद्ध किया जा चुका है ।

अब प्रश्न उठता है कि व्यक्ति महत्वपूर्ण है या समाज । इस सम्बन्ध में डा० लाल का मत है कि दोनों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता, एक के अस्तित्व के बिना दूसरे का अस्तित्व भी स्वीकार नहीं किया जा सकता । मेरी दृष्टि में व्यक्ति सामाजिक मूल्यों को सैद्धांतिक रूप प्रदान करता है और समाज उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करता है । अत: दोनों ही महत्वपूर्ण हैं ।

१- पंखपुरुंगा, पृ०- ५१

पन्द्रह अध्याय

सप्तम् अध्याय— सामाजिक नियन्त्रण—जनमत, नेतृत्व

सामाजिक नियन्त्रण की अवधारणा का समाजशास्त्रीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक संरचना में दृढ़ता एवम् समन्वय रखने वाली शक्तियों के सन्दर्भ में जितना साहित्य रचा गया उसे सामाजिक नियन्त्रण के ही शीर्षक के अन्तर्गत रखा जा सकता है। सामाजिक नियन्त्रण के द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों को समाज के स्थापित प्रतिमानों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया जाता है। सामाजिक नियन्त्रण एक अन्य दृष्टि से भी आवश्यक है—मानव अपनी प्रकृति से भी स्वार्थी, व्यभिचारी, अराजक, लड़ाकू, हिंसक है, यदि उसकी इन प्रवृत्तियों पर अंकुश नहीं रखा जाय और पूरी तरह स्वच्छन्द छोड़ दिया जाय तो समाज युद्ध-स्थल बन जायेगा व मानव का जीना कठिन हो जायेगा। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि समाज का निर्माण ही " सामाजिक सम्बन्धों " एवं " नियंत्रण की व्यवस्था " द्वारा होता है। एक की अनुपस्थिति में दूसरे का अस्तित्व कदापि सुरक्षित नहीं है।

सामाजिक नियन्त्रण की व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए अनेक साधनों एवम् अभिकरणों का सहारा लिया जाता है। यथा— अभिकरण (Agencies) के रूप में परिवार, राज्य, शिक्षण संस्थाएं एवम् अनेक संगठन तो प्रथाओं, नियमों परम्पराओं आदि के लागू करने के

माध्यम हों । जो नियन्त्रण के क्षेत्र में प्रमुख भूमिका अदा करते हैं । इसके साधन स्वरूप जनमत, नेतृत्व, कानून आदि कार्य करते हैं । यहां पर जनमत् और नेतृत्व का नियन्त्रण के रूप में प्रमुख भूमिका का अध्ययन करना है ।

<u>जनमत</u> : वर्तमान युग में जनमत् सामाजिक नियन्त्रण का एक सशक्त साधन माना जाता है । परन्तु, आदिम एवम् लघु समाजों में जनमत के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार पर नियन्त्रण रखा जाता है । किसी एक ही विषय पर समान रूचि रखने वाले लोगों के असंगठित समूह को जनता कहते हैं और एक ही विषय से सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्त अपने निर्णय को ही " मत " कहते हैं । इस प्रकार "जनमत " किसी विषय पर जनता के निर्णय की अभिव्यक्ति है अर्थात् जनमत जनता का ही मत है । जब जनता के सदस्य किसी एक विषय पर वाद- विवाद करते हैं और उससे सम्बन्धित अपनी राय बनाते हैं तो उसे जनमत कहते हैं । मूलतः जनमत् का सम्बन्ध किसी समस्या या विषय से होता है । उस पर समुदाय के लोग छानबीन, वादविवाद के उपरान्त अपना मत प्रकट करते हैं । समाज जिस पक्ष में अपना अत्यधिक मत प्रकट करता है उसी को ही मान्य एवम् चरितार्थ किया जाता है ।

नेतृत्व : समाज की शक्ति संरचना में नेतृत्व का प्रमुख स्थान है। नेता ही राजनीतिक संगठनों और शक्ति संरचना को जीवन, दिशा और प्रभाव प्रदान करते हैं। नेता की योग्यता व क्षमता पर शक्ति का सदुपयोग और दुरुपयोग निर्भर करता है। प्रत्येक समाज की शक्ति संरचना में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो लोगों को प्रोत्साहित करते हैं, प्रेरणा देते हैं, मार्गदर्शन करते हैं अथवा लोगों को क्रिया करने के लिए प्रभावित करते हैं। नेतृत्व एक सार्वभौमिक एवम् विश्वव्यापी घटना है। जहाँ जीवन है, वहाँ समाज है और जहाँ भी समाज है वहाँ नेतृत्व है।

" नेतृत्व " के लिए मूलत: चार विशेषताओं का होना अति-आवश्यक है। प्रथम नेता, द्वितीय अनुयायी, तृतीय परिस्थिति, चतुर्थ कार्य। नेता एवम् अनुयायी सजीव प्राणी होते हैं। मूलत: नेता भी अपने अनुयायियों की भावनाओं का वाहक होता है। साथ ही कुछ परिस्थितियों में उनकी भावनाओं की रक्षा करता हुआ नेतृत्व संचालन करता है।

आधुनिककालीन भारत मूलत: " वर्ग " विभाजन के आधार पर जाना जा सकता है। यह वर्ग विभाजन मूलत: "कर्म " के आधार पर ही हो रहा है। जातिगत आधार के ह्रास के फलस्वरूप आर्थिक एवम्

पेशागत आधार ही विभाजन के प्रमुख अंग हो गये हैं। धर्म सम्बन्धी कार्य करने वालों का अपना अलग ही स्थान है। राजनीतिक संस्थाओं, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि अपना - अपना प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व संभाले हुए हैं। प्रत्येक छोटी से लेकर बड़ी संस्थाएं अपने नेतृत्व के अन्दर अपनी भावनाओं एवम् क्रियाकलापों को अभिव्यक्त कर रही है। राजनीति में जन नेतृत्व, एम० पी०, एम० एल० ए० एवम् अन्य स्थानीय नेतागण कर रहे हैं। धार्मिक समूहों में आर्च विशप, गुरु, महन्त आदि हैं। आर्थिक संस्थाओं के अन्दर अनेक प्रकार की श्रमिक एवम् पूंजीपति लोग उसका नेतृत्व कर रहे हैं।

नेतृत्व का निर्माण मूलत: समूह (वर्ग) सुविधा के अनुसार ही किया है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी - अपनी भावनाएं किस प्रकार सरकार या सत्ता के समक्ष रख सकता है, अप्रत्याशित घटना ही है जिसके फलस्वरूप स्वरुचि के अनुसार नेतृत्व एवम् जन समूह का निर्माण होता रहता है। यही नेतृत्व का प्रमुख एवम् सराहनीय कार्य है।

डा० लाल के नाटकों में सामाजिक विषमता

साहित्य और समाज का अभिन्न सम्बन्ध है। मूलत: साहित्य समाज का बहुत ही उपयोगी मित्र है। साहित्यकार का मन समाज में फैली

असमानताओं, दुष्प्रवृत्तियों को देखकर स्वत: ही साहित्य सृजन के प्रति उत्सुक हो जाता है।

सामाजिक नियन्त्रण में धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक संस्थाओं का मुख्य सहयोग रहता है। धार्मिक संस्थाएं अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों एवं व्यवहारों के द्वारा जन समुदाय को नियन्त्रित करती हैं। आर्थिक संस्थाएं जन जीवन के आर्थिक दोषों का बटवारा करती हैं। राजनीतिक संस्थाएं अनेक प्रकार के औपचारिक साधनों के द्वारा जन नियन्त्रण के कार्य को सम्पन्न करती हैं। सांस्कृतिक संस्थाएं जीवन की अमूल्य निधि हैं।

मानसिक नियंत्रण या निग्रह

सामाजिक नियन्त्रण के लिए रंगमंचीय प्रदर्शन सहायक सिद्ध होता है। यह जन मस्तिष्क को सीधे प्रभावित करता है। डा० लाड के अनुसार नियंत्रण में मानसिक पक्ष का बहुत ही बड़ा हाथ होता है। सभी व्यक्तियों को इन्द्रिय निग्रह का पालन करना चाहिए। वर्तमान समाज में इन्द्रिय - अनिग्रह के कारण हिंसा, बलात्कार, धन संग्रह आदि क्रियाएं बहुत तेजी से बढ़ रही हैं। " अन्धुरुला खिलाना " में

डा० लाल इस पक्ष पर अपना मत व्यक्त करते हुए अर्थ को ही दोषी ठहराया है ।

अब्दुल्ला दीवाना : प्रत्येक बार जब - जब कोई व्यक्ति पथभ्रष्ट होने लगता था तब - तब वह अदृश्य, अमूर्त अब्दुल्ला प्रगट होकर उसकी चेतना को भकझोरता है । पर जब अवरुद्ध विवशी हो जाता है तो उसे लगता है कि शायद उसके बाद अब्दुल्ला मर गया । तब लगता है कि अब्दुल्ला और कोई नहीं व्यक्ति के भीतर का एक अत्यन्त मानवीय सत्य है जो अलग - अलग व्यक्तियों में परिस्थिति के अनुसार जी उठता है । कभी शिकार करते समय व्यक्ति के आड़े आ जाता है, कभी हत्यारों के सामने खड़ा हो जाता है । कभी छूटते हुए व्यक्ति से पूछ बैठता है— मनुष्य अर्थ का दास है पर अर्थ किसका दास है ------ ।[१]

१- करफ्यू, पृ०- ५८

<u>बौद्धिकता पर भौतिकता हावी :</u> डा० लाल का यह नियन्त्रण पक्ष (मानसिक पक्ष) असफल ही दिखाई पड़ रहा है। वास्तव में आधुनिक परिवेश में व्यक्ति की आत्मा मर चुकी है। वह भौतिक पक्ष में ही अपनी सन्तुष्टि समझ रहा है। हर तरफ लूट, अस्मत का व्यापार, बलात्कार का नंगा नाच हो रहा है। अर्थ का दास बना मानव का ही खून पी रहा है। समाज का नियन्त्रण करने वाले विभाग स्वयं ही इसका उपभोग कर रहा है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण डा० लाल का नाटक " अब्दुल्ला दीवाना " है।

स० वकील : हास्पिटल में एक बीमार जवान लड़की के साथ डाक्टर ने बलात्कार किया। दफा ताजिरात हिन्द---।

पुलिस : "पोलिटिकल प्रेशर" की वजह से आपकी किताब से खिसक कर बायें से दायें चला गया। वहां से ऊपर उड़ गया, ऊपर से नीचे गिर गया और नीचे से ------ फुर्र हो गया।

युवक : इसी देर में इस मुल्क में सौ करोड़ पैंतीस लाख " ह्वाइट मनी " " ब्लैक मनी " हो गया। और इतने ही

नवजवान बेकार सड़क पर घूमने लगे ।

पुलिस : माई लार्ड, इसी बीच में इस शहर में तैंतीस बलात्कार, तेरह मर्डर, बत्तीस दुर्घटनाएं और सोलह आत्महत्याएं हो गयीं ।[१]

अनमत

(क) पारिवारिक नियन्त्रण : युवक-युवती की स्वतन्त्रता : सामाजिक नियन्त्रण में परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण है । प्राणिशास्त्रीय जीव की समाजीकरण का प्रथम पाठ यहीं पर पढ़ाया जाता है । नवजात शिशु माता - पिता के नियन्त्रण में प्राथमिक सामाजिक क्रियाओं को सीखता है । बच्चे को संस्कार सिखाने में माता की अहम् भूमिका होती है । यहाँ पर बच्चा खान-पान, बोल-चाल, वस्त्र ग्रहण, शौच आदि क्रियाएं सीखता है । डा० लक्ष्मीनारायण लाल सामाजिक नियन्त्रण में परिवार की भूमिका कुछ उम्र तक ही स्वीकार करते हैं । युवावस्था के बाद डा० लाल युवक - युवती की स्वतन्त्रता के पक्ष में हैं । वे उनको व्यवसाय, विवाह, रहन- सहन के लिए स्वतन्त्र छोड़ देने के पक्ष में हैं ।

१- अब्दुल्ला दीवाना, पृ०- ६३

युवती : मेरी ओर देखो------ नहीं देखोगे ? अच्छा
मेरी बात सुनो------ आज फैसला करके आई हूं
------ तुम्हीं से ब्याह करूंगी ।

युवक : नहीं, तू इस कदर मुझे बर्बाद नहीं कर सकती ।
मेरे संग जाना ही होगा !

(ख) पिछड़ी मान्यताएं एवम् संस्कार : व्यक्तित्व का दमन :

डा० लक्ष्मीनारायण लाल समाज में व्याप्त मान्यताओं एवम् संस्कारों को रूढ़िवादी घोषित करते हैं। उनके अनुसार भारतीय सामाजिक व्यवस्था समय के प्रतिकूल एवम् पाश्चात्य व्यवस्था की तुलना में बहुत ही निम्न कोटि की है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जो व्यक्ति जिस जाति में पैदा होता है, उसी जाति का पेशा एवम् धर्म अपनाता है। तो क्या यह हमारी सड़ी-गली सामाजिक व्यवस्था नहीं है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति का दमन भी होता है। डा० लाल इस व्यवस्था को तोड़ने के पक्षधर हैं।

१- करफ्यू, पृ०- ५८

मनीषा : क्यों इतना डरता है आदमी एक दूसरे से ? क्यों हर समय उसे ऐसे खोल की जरूरत होती है जो सिर्फ देखने में मजबूत हो ? क्यों नहीं वह अपना ' इन्ही बिशन्स ' तोड़कर बाहर आ जाता ? कारण क्या हमारी सड़ी - गली सामाजिक व्यवस्था नहीं है ?[1]

(ग) आधुनिकता की पक्षधरता : कर्म की प्रधानता : डा० लाल आधुनिकता के पक्षधर हैं। वे व्यक्ति विशेष को महत्व देते हैं न कि समाज व्यवस्था को। समाज व्यवस्था का निर्माणकर्ता और कोई नहीं व्यक्ति ही है। वर्तमान में अधिकांश ' जनमत ' प्राचीन सामाजिक व्यवस्था, के प्रतिकूल ही है। डा० लाल जन्म के हिसाब से जाति व्यवस्था को न मानकर कर्म के आधार पर जाति व्यवस्था को मान्यता प्रदान करते हैं। डा० लाल ने भेदभाव की नीति को भी अस्वीकार किया है :

बाबा : ----- पूरा गांव एक परिवार था— एक समुदाय था। जन्म के आधार पर जाति नहीं थी, काम धंधा के मुताबिक थी।[2]

१- करफ्यू, पृ०- २६

२- पंचपुरुष, पृ०- १२

(घ) <u>धर्मांधता का विरोध :</u> सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में धर्म का महत्व कम हुआ है । वैज्ञानिक युग में प्रत्यक्ष एवम् प्रमाण का महत्व बढ़ता जा रहा है । आधुनिक मानव किसी तथ्य को कथन के ही आधार पर स्वीकार करने को तैयार नहीं है । धर्म के क्षेत्र में झूठे बाह्याडम्बर का पालन करना धर्मांधता ही है । डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी इस तर्क का समर्थन किया है । " पंचपुरुष " नाटक में इस तथ्य को देखा जा सकता है ।

गंगाजली : चरण छूती हूं भगवान के ।

उत्तमा : मैं कहां का भगवान : मेरी हंसी मत करो ।
किसी के कहने से कोई भगवान नहीं हो सकता ।[१]

(ङ०) <u>धार्मिक जनमत में परिवर्तन :</u> डा० लाल के अनुसार आधुनिक परिवेश में धार्मिक जनमत अधिकांशतः परिवर्तन की दिशा में है । धर्म के नाम पर समाज को नियन्त्रण के बजाय अनियन्त्रण की स्थिति में पहुंचाया जा रहा है । धर्म के नाम पर जीवों की हत्या अन्याय की प्रवृत्ति स्वार्थपरता को बढ़ावा मिल रहा है । इसी कारण आधुनिक परिवेश में " जनमत " धर्म का विरोध ही कर रहा है । आजकल अधिकांश

१- पंचपुरुष, पृ०- १५

" जनमत " मानवतावादी दृष्टिकोण अपना रहा है। लोगों का विश्वास है कि मानव ही " ईश्वर " का रूप है। इसी की सेवा एवम् सच्चाई का पालन करने से " ईश्वरत्व " की प्राप्ति सम्भव है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी इसी जनमत का समर्थन किया है।

काजी : दर्पन में ही मैंने उस ईश्वर का साक्षात्कार किया।[1]

डा० लाल तन्त्र - मन्त्र का उपहास करते हुए कह उठते हैं कि आजकल अब तन्त्र - मन्त्र से कुछ होने वाला नहीं है। यह बकवास है, वाह्याडम्बर है------।

बेवकूफ : जी पुरोहित महाराज! वे दिन लद गये जब सब काम मंतर से होता था।[2]

(२) <u>नेतृत्व</u>

(क) <u>नेतृत्व का गुण : आकर्षक भाषण :</u> " नेतृत्व " एक सार्वभौम एवम् विश्वव्यापी घटना है। जहाँ भी जीवन है, वहाँ समाज है, और जहाँ भी समाज है वहाँ " नेतृत्व " है। डा० लाल ने भी इस तथ्य को

१- दर्पन, पृ०- ६२

२- रक्त कमल, पृ०- ५४

स्वीकार किया है । डा० लाल ने यह स्वीकार किया है कि नेता समाज के अतिरिक्त कहाँ जा सकता है, उसका जन्म तो समाज की सेवा करने के लिए ही हुआ है । नाटक " कश्मीर की घाटियों में " डा० लाल ने कश्मीर की जनता को उसकी रक्षा के लिए प्रोत्साहित किया है । " शेरवानी " नामक पात्र कश्मीर की जनता का नेतृत्व कर रहा है । वह आकर्षण से भरे भाषण के द्वारा कश्मीर की जनता में त्याग की भावना पैदा कर रहा है । मूलत: आकर्षक भाषण ही नेता का प्रधान गुण माना जाता है । उसकी आवाज में ऐसा जादू होना चाहिए जिससे जन हृदय स्वत: ही उसकी तरफ आकर्षित हो जाय । यह समाज नियन्त्रण का अनिवार्य साधन है ।

शेरवानी : साथियों ! आज हमारे मुल्क पर मुसीबतों के बादल छा रहे हैं । हमें अपने प्राणों की बाजी लगाकर कश्मीर की रक्षा करनी है । हर कश्मीरी आखिरी दम तक इन्सानियत के लिए लड़ता रहेगा ------ ।[१]

१- कश्मीर की घाटियों में, पृ०- ८७

(ढ) <u>समाज और नेतृत्व का सम्बन्ध :</u> पुनः डा० लाल ने नेतृत्व में समर्पण की बात कही है। उनके अनुसार नेतृत्व का कार्य समाज में ही होता है, जंगल में नहीं। इस तथ्य को स्वीकार कर उन्होंने समाज एवम् नेतृत्व के बीच अभिन्न सम्बन्ध की पुष्टि की है।

यथा : धर्म पालन जंगल में होता है या प्रजा के बीच में
जाकर उन्हीं के संग वहीं होकर रहना होता है?
सबकी प्यास से अपनी प्यास जोड़कर जल का स्रोत
ढूंढना होता है।[1]

(ण) <u>नेता : प्रजा हितैषी, न्यायकर्ता, वत्सल :</u> डा० लाल ने सम्पूर्ण देश को एक समुदाय की संज्ञा प्रदान की है। इसके " नेतृत्वकर्ता " के गुणों का भी ज्ञान कराया है। डा० लाल ने भी तुलसीदास की भांति राजा को प्रजा का हितकारी माना है। उनके अनुसार राजा वही है जो सम्पूर्ण जनता को पुत्र के समान प्यार करे, सबको समान न्याय प्रदान करे।

गायन : सुत - सुत प्रजा जो लखै, तुल सम पालै वाहि,
धर्म न्याय सबको करै, राजा कहिए ताहि।

1- यक्ष प्रश्न, पृ०- ६२

जो हित सो पुत्रहि लखै, जो हित सो परिवार,

ताहि भाव पर नेहि लखै सो राजा सरदार ।[1]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल का कथन है कि उपर्युक्त गुणों से युक्त राजा ही सरदार (नेतृत्वकर्ता) बन सकता है । पर अब परिस्थितियां बिगड़ रही हैं । डा० लाल ने सत्य के रूप में नेताओं (नेतृत्वकर्ता) के गुण- अवगुण का उल्लेख किया है जो आज के समाज में अक्षरश: सत्य हो रहा है । स्वलाभ के लिए नेतृत्व वर्ग अनेक प्रकार के अवगुणों का भागी बनता जा रहा है ।

@ <u>अनेक नेतृत्व का उदय :</u> स्वार्थपरता के कारण नेतृत्व वर्ग अनेक प्रकार के अवगुणों का भागी बनता जा रहा है । स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान सम्पूर्ण देश एक झण्डे (तिरंगा झण्डा) के नीचे एकत्र होकर आजादी की पुकार कर रहा था । उस समय सम्पूर्ण देश " एक नेतृत्व " में अपनी आवाज बुलन्द कर रहा था । स्वतन्त्रता के बाद नेतृत्व स्वार्थपरता के ~~बाद नेतृत्व स्वार्थपरता~~ के कारण अनेक वर्गों में बंट गया है । किसी का प्रतीक लाल है, किसी का सफेद, किसी का काला--- आदि

१- तोता- मैना, पृ०- १४

चपरासी : जी हां पहले यह तिरंगे कपड़े पहनता था,
------ फिर लाल---- सफेद--- काला ।[१]

(ड) नेतृत्व के दोष : जनता का शोषण, जनअसन्तोष : पोशाक बदलने के साथ - साथ नेतृत्वकर्ता के गुण भी बदल रहे हैं। झूठ, फरेब, अत्याचार, अनैतिक आचरण उनके विशिष्ट गुण बन गये हैं। आज का नेतृत्व जनता की सेवा नहीं बल्कि उसका शोषण कर रहा है। वह बल प्रयोग के द्वारा चुनाव परिणाम अपने पक्ष में करवा लेता है। आजकल नेतृत्व उसी के पक्ष में है जो झूठ अत्याचार आदि कार्य विशेष रूप से कर रहा है। इसके परिणाम स्वरूप जनता में असन्तोष व्याप्त होता जा रहा है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने इस जन असन्तोष को स्वर प्रदान कर रहे हैं।

जगमा : ----- यह चुनाव नहीं डाकाजनी है। जिसकी लाठी उसकी भैंस । इस मारकाट, दुश्मनी, बैर - विरोध से जो पंचायत बनेगी वह किस काम की होगी ।[२]

१- अब्दुल्ला दीवाना, पृ०- ८६

२- पंचपुरुष, पृ०- १

गांव की पंचायत हो या दिल्ली, लखनऊ की सांसद, विधान सभा का चुनाव हो, प्रत्येक की स्थितियां इसी सन्दर्भ से जुड़ी हैं। प्रत्येक नेतृत्व वर्ग अपनी अस्मिता खोता जा रहा है। जनता में असन्तोष व्याप्त होता जा रहा है। वह " को नृप होय हमें का हानि " के रूप में सन्तोष कर रही है। इस असन्तोषपूर्ण वातावरण में नेतृत्व पक्ष की सारहीनता ही प्रगट हो रही है। जन नियन्त्रण अब ढीला पड़ता जा रहा है। कानून की भूमिका धूमिल पड़ती जा रही है, यह सब नेतृत्व पक्ष का योगदान है।

(ख) आधुनिक नेता : सारहीन व्यक्तित्व :

डा० लाल ने आधुनिक नेतृत्व का सारहीन व्यक्तित्व अपने नाटक " राम की लड़ाई " में प्रस्तुत किया है :

मसखरा : अपने आपको राजनीति का आदमी मत कहो। भ्रष्ट राजनीति का पशु कहो। ------ अरे अरे मुझे क्यों मारते हो ? मैं तो आपकी प्रजा हूं। उन्नीस सौ सत्तावन में पांच कुएं खोदे गये कागज पर-- ढाई हजार फी कुआं सन् साठ में तीन तालाब पाटे गये, जबकि तालाब थे ही नहीं।

सन् उनहत्तर में चकबन्दी आयी । फी चक ५००)रुपये ।

सन् पचहत्तर में नसबन्दी आयी ------ ।[१]

इस प्रकार का नेतृत्व एवम् तथाकथित जनसेवा का वातावरण समाज में चारों तरफ व्याप्त हो गया है । समाज का नेतृत्व पक्ष से विश्वास छूट गया है ।

ई- नियन्त्रण के क्षेत्र में डा० लाल का रचनात्मक योगदान : आधुनिक विघटनकारी प्रवृत्ति एवम् सामाजिक मूल्यों के घटते महत्व को देखकर डा० लाल का मन बहुत ही खिन्न दिखाई पड़ता है । डा० लाल अनेक धर्म, अनेक जाति और गिरे हुए नेतृत्व को सामाजिक विघटन (अनियन्त्रण) का कारण मानते हैं । इस विघटन को रोकने के लिए एक जाति, एक धर्म अपनाने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं । धर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि- " लोगों की भलाई एवम् जन जागरण ही सच्चा धर्म है । " यदि प्रत्येक भारतवासी डा० लाल के इस बताये हुए धर्म का पालन करे तो यह (धर्म) भारतीय समाज के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है । डा० लाल के इस बताये हुए धर्म का पालन करें तो यह (धर्म) भारतीय समाज के

१- राम की लड़ाई, पृ०- २०

लिए वरदान सिद्ध हो सकता है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने " रक्त कमल " नामक नाटक में ऐसे ही पात्र कमल की कल्पना की है।

आलस्य : (सैनिक वेश) मैं हिन्दू।

डाक्टर : मैं हिन्दू बेटे।
कमल : तुम्हारी जाति
आलस्य : भारतीय

कमल : तुम्हारा धर्म

आलस्य : यानी सब भारतीय जनता

एक जाति एक प्राण

एकता।[1]

१- रक्त कमल, पृ०- ७६

अष्टम् अध्याय

अष्टम् अध्याय : सामाजिक परिवर्तन

(क) <u>मनुष्य का अन्तर्मन्थन</u> : मनोविश्लेषण में मानव मन के अन्तर्जगत् की सूक्ष्मता का रूप प्रदर्शित होता है। मन के तीन सोपान होते हैं—चेतन, अतिचेतन, अचेतन या उपचेतन। इनमें मानसिक अनुभूति को व्यक्त करने वाले चेतन, उपचेतन ही प्रधान स्तर हैं। चेतन बाह्य जगत से प्राप्त वेदना को उपचेतन तक पहुंचाता है। मन की सतह पर जो विचार उठते हैं, वे क्षणमात्र के लिए चेतन मन के द्वारा प्रवेश पाकर उपचेतन में विलुप्त हो जाते हैं। इसके विरुद्ध उपचेतन मन में विकसित सभी विचारों को अपनी अन्तस् में संजोये रखता है और वह अनुकूल स्थितियों में मानसिकता की उक्त दशा को प्रस्तुत कर देता है। मन की सारी क्रिया इसी उपचेतन पर ही निर्भर होती है। अस्तु मनोविज्ञान यह मानता है कि उपचेतन मन ही चेतन मन को क्रियाशील करता है। इनके टकराहट से अन्तर्मन्थन भी शुरू हो जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी निबन्ध ग्रंथ 'चिन्तामणि भाग एक' में मनोविकारों पर प्रकाश डाला है। उन्हीं के शब्दों का अंश, "नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली

इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के वे भिन्न - भिन्न योग संघटित होते हैं जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सुख और दुःख की मूल अनुभूति ही विषय भेद के अनुसार प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूप धारण करती है।"[1] इस प्रकार सिद्ध है कि एक सांसारिक प्राणी के अन्तर्मन में नाना प्रकार के भाव उठते रहते हैं। मनुष्य का मस्तिष्क संसार को देखकर क्षण- प्रतिक्षण क्रियाशील रहता है।

(ख) <u>आधुनिकता की मांग और उसकी मूल्यपरता :</u> आधुनिकता की पहचान कालवाचक अर्थ से कम दृष्टि विशेष से अधिक है। प्रत्येक कालखण्ड का आधुनिक चरण होता है- कालक्रमानुसार उस कालखण्ड का अन्तिम चरण। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उस चरण का वैचारिक स्तर पूर्व चरणों की अपेक्षा उन्नत और प्रतिष्ठित हो। विशिष्ट राजनीतिक और आर्थिक कारणों से यह स्तर पर्याप्त रूप से गिर भी सकता है। यदि युगीन परिस्थितियाँ स्वस्थ व अनुकूल हों तो यह पक्ष भी निश्चित रूप से अपेक्षाकृत उन्नत और अनुकूल होगी।

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-१, पृ०- १ - २

भारत में आधुनिकता का अर्थ है " पश्चिमी प्रभाव "— पहले यूरोप का और अब अमेरिका का भी, जबकि पाश्चात्य आधुनिकता का अर्थ है धार्मिकता, बौद्धिकता और उपयोगितावादी रूचि का मिश्रण। इसी के प्रभाव स्वरूप भारतवर्ष में भी अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। यथा-

(१) परम्परा भंजन

(२) शहरीकरण

(३) वैज्ञानिक रूचि का विकास

(४) विडम्बित विचार

(५) नई नैतिकता की स्थापना

(६) छोटी रचनाओं की प्रमुखता

इस्लाम और अंग्रेजी हुकूमत तथा उनकी आक्रमणकारी धार्मिक नीति के कारण हिन्दू समाज के सामने पहला प्रश्न नई परिस्थितियों के अनुसार आत्म विकास का नहीं, आत्म सुरक्षा का था। किसी भी प्रकार के परिवर्तन का मानी उसके लिए आत्म विनाश था। किन्तु स्वतन्त्रता के बाद हिन्दू समाज की यह परम्पराप्रियता कुछ मात्रा में घटी है और अब नये परिवर्तनों के प्रति लगाव बढ़ा है। यह लगाव उचित एवम् अनिवार्य है।

आधुनिकता के प्रसार के साथ ही शहरीकरण की प्रवृत्ति फैलती है । आज के जीवन और साहित्य में शहरी रुचि, शहरी परिवेश और शहरीपन से उन्मथित संवेदनाओं को जितनी अभिव्यक्ति मिली है, उतनी पहले कभी नहीं मिली थी । कारण यह है कि आधुनिकता का शहरीपन से अनिवार्य सम्बन्ध है । आज की आधुनिकता की हवा में औद्योगिक प्रसार, आवागमन के साधन, विद्युत, डाक्टर इत्यादि की सुविधाओं का प्रसार सम्पूर्ण समाज में हो रहा है ।

विज्ञान ने आधुनिकता के मेरुदण्ड का निर्माण किया है । इसलिए आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देश में भी जब आधुनिकता फैलती है, तब उस देश में विज्ञान की नई उपलब्धियों के प्रति उत्सुकता जगती है । परिणामस्वरूप आज के परिवेश में वैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रति जन आकर्षण बढ़ता जा रहा है ।

आधुनिकता की एक निशानी विलम्बित विवाह है । इस दृष्टि से हिन्दी भाषी क्षेत्र पिछड़ा हुआ है । आधुनिक परिवेश में व्यक्ति को तभी विवाह करना चाहिए जब वह अपने पैरों पर खड़ा हो जाय । वैज्ञानिक दृष्टि से लड़के - लड़कियों का विवाह क्रमशः २१ व १८ वर्ष के बाद ही करना उचित है । यह आधुनिक विचार उपयोगी

एवम् अनुकरण के योग्य है।

आधुनिकता ने एक नई नैतिकता को जन्म दिया है जिसको तर्क पुष्ट और बुद्धिग्राह्य बनाने के लिए उसने विराट दर्शन भी प्रस्तुत किया है। आधुनिक परिवेश में " छोटा परिवार सुखी परिवार " " दो या तीन बच्चे होते हैं घर में अच्छे " नैतिकता का मापदण्ड बनता जा रहा है। समाजशास्त्रियों की धारणा है कि इसी समाज में शान्ति एवम् खुशहाली रहेगी। साथ ही लड़के - लड़कियों में अभेद भावना भी नैतिकता मानी जा रही है। साथ ही यौन स्वच्छन्दतावाद भी नैतिकता का आधार माना जा रहा है जिसके परिणाम स्वरूप बन्ध्याकरण, गर्भनिरोधक साधन, गर्भपात और विलम्बित विवाह का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इसी कारण सांस्कृतिक दृष्टि से हमारे समक्ष प्रश्न खड़ा कर दिया है। परिणामस्वरूप वात्सल्य का भाव कम होने लगा है। आधुनिकताओं में मातृत्व-करुणा की तुलना में अप्सरा धर्म के प्रति लगाव बढ़ता जा रहा है, आचरण की पवित्रता से बढ़कर चमड़ी के सौन्दर्य को महत्व मिलने लगा है। इस प्रकार की नई आधुनिक नैतिकता भारतीय समाज एवम् संस्कृति की मूलनिष्ठा तिरोहित कर सकती है। मूलरूप से इस नैतिकता का उद्गम जनसंख्या वृद्धि को रोकने एवम् भौतिक

प्रेम के कारण हुआ है।

साहित्य रचना की दृष्टि से आधुनिकता की विशेष प्रवृत्ति काव्य के क्षेत्र में छोटी रचनाओं की ओर है। लोगों का कथन है कि प्राचीनकाल में बड़ी रचनाओं (प्रबन्ध काव्य) की ओर विशेष झुकाव रहता था। कुमार विमल के अनुसार - " चूंकि आधुनिकता " Primitive Atmosphere " के विरुद्ध विद्रोह का स्वर लेकर आती है इसलिए आधुनिकता की प्रवृत्ति बड़ी रचनाओं के प्रति आग्रह नहीं रखती है।"[१]

इन आधुनिक प्रवृत्तियों का उपयोग की दृष्टि से बहुत महत्व है। आज के परिवेश में व्यक्ति की मानसिक शान्ति कम भौतिक सुख अधिक काम्य दिखाई पड़ रहा है।

(ग) बदलते समाज की रूढ़ियाँ : परिवर्तन मनुष्य के सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण विशेषता है। विश्व में ऐसा कोई मानव समाज नहीं है, जिसमें परिवर्तन न होता हो। कभी - कभी दूर से देखने पर पता चलता

१- कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ०- २४५

है कि कुछ समाज बिल्कुल अपरिवर्तनशील है, किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। परिवर्तन तो प्रतिक्षण हुआ करता है, लेकिन परिवर्तन की गति इतनी मन्द होती है कि हमें ऊपर से ऐसा प्रतीत होता है कि कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। कुछ समाज ऐसे होते हैं जिनमें परिवर्तन बड़ी तीव्रगति से होता है, इसलिए उनकी परिवर्तनशीलता से हम स्पष्ट रूप से परिचित हो जाते हैं।

यदि हम अपने समाज के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो स्पष्ट रूप से अनुभव करते हैं कि जब से समाज का प्रादुर्भाव हुआ, तब से समाज के रीति- रिवाज, परम्पराएं, रहन- सहन की विधियां, पारिवारिक और वैवाहिक व्यवस्थाएं आदि समय- समय पर बदलती रही हैं। बहुत दूर नहीं, बल्कि आज से १०- १५ वर्षों पूर्व की अनेक सामाजिक रीति- रिवाज और व्यवस्थाएं आज नहीं हैं और जो आज हैं, वह कल नहीं रहेंगी। इस प्रकार जब व्यक्ति किन्हीं परिस्थितियों में या किन्हीं कारणों से अपने आचरण को बदलने लगते हैं तो समाज में भी बदलाव आने लगता है।

आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन का विषय बहुत विस्तृत और जटिल है। उसको ठीक- ठीक समझने के लिए आर्थिक, सामाजिक

और सांस्कृतिक, कानून, राजनीति, शिक्षा, धर्म जैसे विभिन्न क्षेत्रों का अवलोकन करना पड़ेगा। मूलत: भारतीय समाज के बदलते रूप को अंकित करने के लिए आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण पर विचार करना आवश्यक है। यह उन परिवर्तनों की और संकेत करता है जिनका भारतीय समाज में समावेश अंग्रेजी राज में हुआ और जो कुछ क्षेत्रों में अधिक वेग के साथ स्वाधीन भारत में भी हो रहा है।

आधुनिक भारत में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। मूलरूप से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक, कानून, राजनीति, शिक्षा, धर्म आदि क्षेत्र प्रभावित हो रहे हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यहां पर इन्हीं क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों को स्पष्ट करना उचित होगा। इन्हीं क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप स्वतन्त्रतापूर्व के भारत की तुलना में आधुनिक भारत बिलकुल बदला हुआ है।

(i) आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन : भारतवर्ष में धनोपार्जन के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए हैं। मध्ययुग में आधुनिक युग की तरह मशीनों के उपयोग का ज्ञान नहीं था, और न ही आज की तरह अनेक शक्तिशाली मशीनों का ही निर्माण हुआ था। आधुनिक युग को मशीन का युग कहा जा रहा है। इस मशीन युग के विकास से गांवों की आर्थिक संरचना विशेष रूप

से प्रभावित हुई है। मध्ययुगीन समाज में कृषि कार्य से लेकर वस्त्र-निर्माण तक का कार्य मानव शक्ति पर निर्भर था, परन्तु आजकल सम्पूर्ण कार्य मशीन के द्वारा सम्पन्न हो रहा है। इसके फलस्वरूप नवीन भारत में अनेक प्रकार के उद्योगों की स्थापना हो रही है। यथा- कपड़ा उद्योग, बर्तन उद्योग, कागज उद्योग आदि। इन उद्योगों की स्थापना के फलस्वरूप सामाजिक सम्बन्धों में भी अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए। यथा- सेवक सेव्य सम्बन्ध का आधुनिक रूप :

सारंग : मैं भी तो मालिक आपकी ही इन्डस्ट्री का एक मजदूर हूं ---।[1]

डा० लाल ने इस नवीन आर्थिक प्रणाली को रेखांकित किया है जिसके परिणामस्वरूप मालिक - मजदूर या पूंजीपति - श्रमिक का उदय हुआ है।

(ख) सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में परिवर्तन : आधुनिक भारत में सामाजिक एवम् सांस्कृतिक क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन हुए हैं। सामाजिक रीतियों, खान- पान, रहन - सहन, सामाजिक मूल्यों आदि में बदलाव आ रहा है। जातीय व्यवस्था पर आधारित खान- पान के क्षेत्र में

1- डा० लक्ष्मीनारायण लाल : रक्त कमल, पृ०- १०२

परिवर्तन हुए हैं। नारी की स्थापना एवम् मानवतावाद के फलस्वरूप इस जातीय व्यवस्था में परिवर्तन हुआ है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने इस परिवर्तन को स्वीकार किया है, नाटक " रक्त कमल " में इस तथ्य को देखा जा सकता है। इस नाटक का नायक " कमल " जो कि एक उच्च जाति का प्रतिनिधित्व कर रहा है, निम्न जाति की लड़की "अमृता" के घर खाना खा लेता है। वह इस तथ्य को स्वयं अपनी माँ को बताता है जिसने बचपन से ही उसे इस तरह के व्यवहार से रोकती रही।

माँ : तुम कहाँ थे कमल ? आज सुबह ही से मैं तुम्हें ढूंढ रही हूं। तुमने आज कुछ खाया पिया नहीं।

कमल : भोजन कर लिया माँ।

माँ : कहाँ ?

कमल : अमृता के घर।[1]

इसी प्रकार जातीय व्यवस्था पर आधारित विवाह पद्धति में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन युग में विशेष रूप से एक जाति से सम्बन्धित व्यक्ति दूसरी जाति से वैवाहिक सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकता था। आधुनिक युग में पश्चिमीकरण के प्रभाव स्वरूप परिवर्तन

१- रक्त कमल, पृ०- ३२

आने लगा है। इसके अतिरिक्त भारत सरकार भी इस रूढ़िग्रस्त व्यवस्था को भी समाप्त करने में सहयोग प्रदान कर रही है। आज के समाज में व्यक्ति का महत्व जाति के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर माना जा रहा है। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी इस प्रकार के बदलाव को प्रदर्शित किया है :

> जनक : जो वीर इस धनुष की प्रत्यंचा खिंचकर चढ़ा देगा उसी के साथ जानकी का ब्याह बिना कुल, जाति विचार किये कर दिया जायेगा।[१]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पिछले करीब ३५ वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। वर्तमान में पश्चिमीकरण लौकिकीकरण तथा जातीय गतिशीलता ने स्त्रियों की सामाजिक,आर्थिक स्थिति को उन्नत करने में काफी योग दिया है। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रगति हुई है। इसी के परिणामस्वरूप कई स्त्रियां औद्योगिक संस्थानों और विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी करने लगी हैं। अब वे आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर होती जा रही हैं। डा० लक्ष्मीनारायण लाल

१- राम की लड़ाई : पृ०- ५०

ने भी स्त्रियों की इस आर्थिक उन्नति का समर्थन किया है। डा० लाल के नाटक " लंकाकाण्ड " की नायिका " छलिका " पर घर ही "गारमेण्ट-कम्पनी " की स्थापना की है :

छलिका : मैं दिन रात सिलाई बुनाई करूं।

गारमेण्ट कम्पनी से फिर कमाऊं।[1]

छलिका : ठीक है कपड़े तब करो ---।[2]

वर्तमान भारतीय समाज में व्याप्त प्रथाओं, लोकाचारों, कुरीतियों में मूलभूत परिवर्तन हुआ है। आधुनिक समाज में पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, बाल विवाह आदि सामाजिक प्रवृत्तियों का खण्डन हो रहा है। स्त्रियाँ घर की चारदीवारी को लांघकर बाहरी दुनिया में अपने कर्म प्रभाव को फैला रही हैं। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी इस पर्दा प्रथा को अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है :

पचरासी : उल्लू कहीं का। उससे क्या मतलब बताओगे भला, पर्दे में रहते - रहते थक गयी हैं यहाँ की औरतें---।[3]

१- लंकाकाण्ड, पृ०- ५६

२- -वही- पृ०- ५८

३- अब्दुल्ला दीवाना, पृ०- ५८

इसी प्रथा के परिणामस्वरूप आज का स्त्री-समाज गांव में फैली इस अव्यवस्था से नफरत करने लगा है। वह इस लोकरीति को स्वास्थ्य के विपरीत बताते हुए अपनी अरुचि व्यक्त कर रहा है :

देवियां : मैं वहां रहना बिल्कुल पसन्द नहीं करती। उनकी जन्मभूमि गांव में है। बुरी रद्दी जगह है। मैं तो वहां फौरन बीमार पड़ जाऊंगी। इतना पर्दा है वहां कि--- छि --- छि ---।[1]

डा० लाल विधवा प्रथा को समाज का कोढ़ मानते हैं जिसके द्वारा समाज में अनेक प्रकार की बुराइयां पैदा हो रही हैं। वे विधवा विवाह का समर्थन करते हैं और स्त्री वर्ग को पुनः शादी करके नवीन जीवन जीने को उत्साहित कर रहे हैं। डा० लाल ने नाटक " कैद से पहले " में इस तथ्य को बड़े बुद्धिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है :

सूबेदार : --- हां मैं कह रहा था न कि तुम अपनी को
देखो--- तुम्हारी पूरी उमर पड़ी थी ---
देख सका--- सोचो अगर तुम उसी तरह विधवा

१- रक्त-कमल, पृ०- ३२

बन के बैठे रहोगे तो तुम्हारा कौन पार लगावा।[१]

वर्तमान भारतीय समाज में प्राचीनकाल से प्रचलित अनमेल विवाह में भी परिवर्तन हो रहा है। आजकल लड़कियां स्वयं ही इस विवाह के प्रति अपना विरोध प्रकट कर रही हैं। डा० लाल ने भी इस पद्धति को अनुचित स्वीकार किया है। डा० लाल इस परिवर्तन में लड़के - लड़कियों की भूमिका को स्वीकार कर रहे हैं। डा० लाल के नाटक ` मड़ै का मोर ` में ` सोना ` की शादी सं-पुर्वा के चौधरी के बड़े लड़के के साथ हो रही है जो कि सोना की उम्र से तीन गुना है। इसी नाटक में ` हीरा ` नामक युवक इसका विरोध कर रहा है। वह सोना को लेकर रात में ही भाग जाना चाहता है :

पाण्डे : (इधर- उधर देखकर हाथ मलते हुए)

हूँ है कि अपनी सोना बिटिया की शादी सेंपुवां के चौधरी के बड़े लड़के से कर दी जिए---।

हीरा :--कंचन आज रात को तुम मेरी एक सहायता कर सकोगी ?

कंचन : (घबड़ाकर) क्या ?

१- सेत रे मछे, पृ०- २०७

हीरा : मैं आज रात को अंधेरे में सीना को यहां से भगा
ले जाना चाहता हूं ---- ।[1]

भारतीय समाज में विवाह पूर्णतया एक धार्मिक संस्कार था और प्रत्येक व्यक्ति को विवाह से सम्बन्धित अनेक आदर्शों और निर्णयों का पालन करना अनिवार्य था। आधुनिक युग में प्राचीन विवाह सम्बन्धी आदर्श एवम् निर्णय व्यर्थ साबित हो रहे हैं। लड़के - लड़कियां विवाह सम्बन्ध स्थापित करने में विशेष रूप से आगे आ रही हैं। इसी के फलस्वरूप आधुनिक भारतीय समाज में प्रेम- विवाह का फैशन बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार का परिवर्तन डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक " कर्फ्यू " में देखा जा सकता है :

युवती : मेरी ओर देखो ---- नहीं देखोगे ? अच्छा मेरी
बात सुनो ---- आज फैसला करके आई हूं ------
तुम्ही से ब्याह करूंगी ।[2]

नाटक " व्यक्तिगत " में भी इस तथ्य को देखा जा सकता है :

१- मादा का मोर : पृ०- ४०

२- कर्फ्यू : पृ०-५८

मैं : ---- शादी को लोगों ने खेल - तमाशा बना रखा है,

शादी एक निजी व्यक्तिगत चीज है---- दो आत्माओं

का मिलन है ---- जिसकी बुनियाद है प्रेम। ऐसा

प्रेम जहां है पति- पत्नी में निरन्तर एक ग्रंथि है

------ विकास। यही विकास तो समाज का

विकास है।[१]

डा० लाल ने वैवाहिक कर्मकाण्डों का भी खण्डन किया है। नाटक " रातरानी " में " सुन्दरम् " से निरंजन बाबू का विवाह प्रेम विवाह को रोशनी प्रदान कर रहा है। दोनों ने मुट्ठी भर फूल की माला बनाकर इस पवित्र कार्य को सम्पन्न किया है जिसका साक्षी कुंतल और फूल का रखवाला माली है :

माली : मां ------ मां जी - जी में यह क्या हो गया।

कुंतल ? व्याह

माली : सुन्दरम् से निरन्जन बाबू का व्याह। इस पर कौन

ऐतबार करेगा।

१- अभिशाप, पृ०- १६

कुंतल : मेरा मन ।---[१]

निष्कर्षत: यह विचार का सशीकरण ही है। अब इस कार्य को सम्पन्न करने में अनेक प्रकार की धार्मिक रूढ़ियों का प्रभाव कम होता जा रहा है।

③ धर्म के प्रभाव में ह्रास : वर्तमान समय में धर्म के प्रभाव में कमी आ गई है। आजकल धर्म का पालन मुख्य रूप से आत्मा की शान्ति के लिए ही किया जा रहा है। साथ ही वर्तमान समय में धर्म पिछड़े हुए लोगों का जामा या धनी वर्ग के दुष्कृत्यों को छिपाने का परदा बन गया है।

डा० लाल ने अपने नाटक " पंच पुरुष " में धर्म के गिरते हुए प्रभाव को अंकित किया है। इस नाटक में " उदमा " नामक पात्र गांव की एक 'रामलीला' में " राम " का चरित्र धारण किये हुए है। जब "गंगावती" नामक नायिका उसका पैर स्पर्श करना चाहती है और कल्याण करने का आशीर्वाद लेना चाहती है तब " उदमा " कह उठता है :

उदमा : अगर मेरे स्पर्श से तुम्हारा कल्याण हो जाए तो लो मैं स्पर्श करता हूं तुम्हें। तुम्हारे चरणों को अपने माथे से छूता हूं।[२]

१- रातरानी, पृ०- ८३

इस प्रकार राम वेशधारी उपमा का यह कथन धर्म के प्रति अविश्वास ही व्यक्त कर रहा है।

⑥ राजनीति के क्षेत्र में परिवर्तन : आधुनिक युग में प्रचार, मतदान, नेतृत्वकर्ता आदि के चरित्रों में आमूलचूल परिवर्तन हो रहे हैं। आज समाज का नेतृत्व चरित्रवान, समाज हितैषी, गुणवान के द्वारा न होकर गुण्डे, चरित्रहीन, पैसे वाले आदि कर रहे हैं। मूलरूप से यह प्रजातन्त्र के साथ बहुत बड़ा अन्याय हो रहा है। डा० लाल के नाटक " राम की लड़ाई " में इस तथ्य को देखा जा सकता है :

मंत्री : इसके साथ इस जमार के कितने गुण्डे, डाकू, बदमाश, पैसे वाले और ताकि है।

सरजू : कोई नहीं।

मंत्री : फिर बेकार ---- मुझे इस क्षेत्र में एक ऐसे नवयुवक की जरूरत है, बल्कि बड़ी बेसब्री से तलाश है जिसके पास ताकत है : ---- लोगों को डराने वाली ---- मैं उसे एम० एल० ए० बनाऊंगा, अपना आदमी।[1]

१- राम की लड़ाई, पृ०- ५२ - ५३

यहाँ अवश्य मूल्यहीनता की दिशा में है, नये मूल्यों की स्थापना में नहीं ।

(ग) <u>औचित्य और मूल्यांकन</u> : परिवर्तन प्रकृति का एक शाश्वत एवम् अटल नियम है । वर्तमान परिवेश में भारतीय समाज भी परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है । भारतवर्ष में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों में परिवर्तन हो रहे हैं । समाजशास्त्रियों की धारणा है कि भारतवर्ष में यह बदलाव अंग्रेजों के भारत आगमन से ही प्रारम्भ हो गया था जो आज भी निरन्तर चल रहा है ।

भारतीय समाज में परिवर्तन निश्चित एवम् आवश्यक है । प्राचीन भारतीय समाज जो कि अनेक प्रकार की रूढ़िवादिता का घर बन चुका था, पाश्चात्य जगत के प्रभाव से नवीन रूप धारण कर रहा है । भारतवर्ष में कुटीर उद्योग धन्धों के स्थान पर नवीन मशीन चालित कारखानों की स्थापना हो रही है । इसी के परिणामस्वरूप नगरीकरण का उदय हो रहा है, जहाँ पर उच्च सभ्यता एवम् नई संस्कृति का दर्शन प्राप्त होता है । आज के भारतीय समाज में स्त्री जगत में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं, उनके प्रति एक न्याय प्रदान किया गया है । हजारों वर्षों से घर की चारदीवारी में बन्द भारतीय स्त्रियाँ आज खुले वातावरण में सांस ले रही हैं ।

यह परिवर्तन उचित एवम् अनिवार्य ही है।

धर्म के प्रभाव में कमी आ गयी है। आजकल धर्म अपनी रूढ़िवादी प्रवृत्ति के भंवर में लोगों को नहीं फंसा पा रहा है। फलत: आज के आधुनिक परिवेश में धर्म के क्षेत्र में भी सुधार हो रहा है। आज का मानव समाज मानवता को धर्म से ऊपर मान रहा है। धर्म के चक्कर में पड़कर व्यक्ति अनेक प्रकार के कष्ट उठाता था, जिनका प्रभाव आज कम होता जा रहा है जो उचित ही है।

संस्कृति के क्षेत्र में भी उपयोगितावाद का महत्व बढ़ता जा रहा है। व्यक्ति प्रवृत्ति से ही उदार एवम् सरल होता जा रहा है। यथा विवाह के ही क्षेत्र में फैले अनेक प्रकार के रूढ़ि कार्यों को छोड़कर आज का समाज " प्रेम विवाह " अपनाकर भी कुछ ही माता एवम् ईश्वर को साक्षी मानकर ही विवाह कार्य को सम्पन्न करता रहा है। यह उचित ही कहा जा सकता है।

राजनीति के क्षेत्र में वंशानुक्रम प्रणाली में परिवर्तन हुआ है। आज के समाज में अधिकांश राष्ट्र प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को अपनाते जा रहे हैं। इसी के परिणामस्वरूप आदिकाल से प्रचलित एक ही वंश के शासन को समाप्त हो रहा है। परन्तु आज के इस परिवेश में राजनीति

के बीच में गुण्डागर्दी एवम् नौकरशाही का भी प्रवेश हो रहा है यह अनुचित ही कहा जायेगा। इसी के परिणाम स्वरूप आज की प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली दूषित होती जा रही है। मतदान से लेकर नेतृत्व निर्धारण तक इसका प्रभाव देखा जा रहा है। आज के समाज में जो व्यक्ति बिल्कुल ही चरित्रहीन है वही नेतृत्व का कार्य कर रहा है।

निष्कर्षतः आधुनिक समाज में परिवर्तन के फलस्वरूप जनता के साथ न्याय हुआ है। अब उन्हें भी कुछ अधिकार एवम् कर्तव्य का बोध हुआ है। इसके साथ ही भारतीय समाज के आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति हुई है।

(७) आधुनिक समाज का नया "दर्पण" : साहित्य समाज के लिए लिखा जाता है, और जब साहित्य समाज के लिए उपादेय होता है तभी समाज उसे ग्रहण करता है। साहित्य की उपादेयता से ही उसकी प्रासंगिकता निश्चित है जो साहित्य जितने लम्बे समय तक अपनी प्रासंगिकता रखता है वह उतना ही महान् होता है। समसामयिक परिस्थितियाँ लेखक पर अपना प्रभाव डालती हैं और उन परिस्थितियों के प्रति लेखक के मन में कुछ विशिष्ट प्रतिक्रिया होती है, यही प्रतिक्रिया साहित्य सृजन हेतु है। यह

प्रतिक्रिया के पीछे लेखक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व क्रियाशील रहता है। समाज में जो आसक्त, उपेक्षित और शोषित हैं उनके प्रति साहित्यकार के मन में एक संवेदनात्मक लगाव होता है और वह उन्हें ऊपर उठाना चाहता है।

हमारे देश में स्वतन्त्रता के बाद बड़ी तेजी से मानवीय मूल्यों में परिवर्तन हुआ है। वैज्ञानिक एवम् औद्योगिक विकास ने हमारी प्रवृत्ति को शुष्क, स्वार्थ और वैयक्तिकता की ओर मोड़ा है। व्यक्ति अपने में पूरी तरह सिमट गया है और उसकी यह सिमटन उसके व्यक्तित्व को लगातार सिकोड़ती जा रही है। शिक्षा और सभ्यता की दिशा में हम थोड़ा बहुत आगे अवश्य बढ़े हैं पर आत्मीयता में बहुत पिछड़ते जा रहे हैं। पैसे की अन्धी लिप्सा हमारे सद्मूल्यों को खा रही है। इस अर्थलिप्सा ने हमारे परिवार और समाज को असंतुलित कर दिया है। आज व्यक्ति हर तरह से पैसा पैदा करने में लगा है, उसने अपनी आवश्यकताएं काफी बढ़ा ली है और उनकी पूर्ति के लिए भ्रष्ट से भ्रष्ट तरीके अपना रखा है। समाज में भ्रष्टाचार और शोषण बढ़ गया है। धर्म और नैतिकता के प्रति लोगों में आस्था नहीं रही। मूलतः डा० लाल के नाटक "मिस्टर अभिमन्यु" में आधुनिक भ्रष्ट प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। मि० राठौर

स्वयं नायक राघव की पत्नी ने अपने घर में अवैध सामग्री का संग्रह कर लिया है। वह एक गाड़ी की जगह दो - दो गाड़ियां रखने की इच्छा प्रकट कर रही है। यह धन क्या नैतिकतापूर्वक इकट्ठा किया हुआ है ? यह निःसन्देह गलत तरीके अपनाकर इकट्ठा किया हुआ है।

विमल : मेरी कार आपको पसन्द है

मि० राठौर : पसन्द तो है, लेकिन फिर सोचा लेटेस्ट माडल ही क्यों न लूँ।

विमल : मैंने भी सोचा यहां पहुंच कर दो कारें क्यों न रखी जाय।

विमल : हमारे पास इतने कीमती सामान इकट्ठे हो गये हैं, इन्हें चेक करना भी एक मुसीबत है।[१]

नगरों की अति व्यस्तता ने मनुष्य को बिल्कुल अकेला कर दिया है। सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार फैला है। समाज का एक वर्ग अत्यधिक धनी और दूसरा वर्ग अत्यधिक गरीब होता जा रहा है। हमारी राजनीति में भी वैयक्तिक स्वार्थ घुस आया है। आम आदमी की जिन्दगी दिन

१- मिस्टर अभिमन्यु, पृ०- ५० - ५१

पर दिन घटित हीती जा रही है। उसमें निराशा और कुण्ठा पूरी तरह व्याप्त है। उसे निर्धनता ने पूरी तरह जकड़ लिया है। आम आदमी की समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं है। यही कारण है कि उसमें निष्क्रियता और दायित्वहीनता बढ़ती जा रही है। स्वतन्त्रता के बाद हुए बाहरी आक्रमणों, भीतरी दंगा फसादों तथा अकालों आदि से देश का आर्थिक ढांचा काफी टूटा है। वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमतों के कारण आम आदमी का जीवन खतरे में पड़ गया है। आज व्यक्ति इतना अनैतिक हो गया है कि उसके विकास के सभी रास्ते लगभग बन्द हो गये हैं।

प्रत्येक सच्चा लेखक अपने समाज और परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध होता है। वह चाहता है कि हमारे देश के लोग बेहतर जिन्दगी जियें। पर जब वह देखता है कि देश की अधिकांश जनता दुःखी और त्रस्त है तो उसके ऊपर उसकी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया होती है और वह उस व्यवस्था पर चोट करता है जो उसके लिए जिम्मेदार है। विगत दशक में लिखे गये अधिकांश नाटक आज की भ्रष्ट व्यवस्था पर प्रहार करते हैं। आज का साधारण प्राणी नौकरशाही और गुण्डाशाही के बीच पिस रहा है। यदि वह इसके खिलाफ कोई आवाज भी उठाता है तो उस आवाज को हमेशा के लिए शान्त कर दिया जाता है। डा० लाल के नाटक " मिस्टर

अभिमन्यु ' में इसी प्रकार का उपक्रम देखा जा सकता है। इस नाटक में ' गयादत्त ' राघन और आत्मन प्रमुख पात्र हैं। ' आत्मन ' एक साधारण व्यक्ति है। गयादत्त एक उच्च राजनीतिज्ञ स्वयं राघन कलेक्टर बने हुए हैं। आत्मन जब गयादत्त के भ्रष्टाचार को राघन के समक्ष उपस्थित करता है तो राघन (कलेक्टर) उसे न्याय न दिलाकर, मौत ही देने में सहायता करते हैं।

गयादत्त : पता है कहाँ खड़े हो ?

आत्मन : आप दोनों के बीच --- गुण्डाशाही ---

नौकरशाही ।[1]

पुनः जब आत्मन कलेक्टर के कोठे के बाहर जाता है तभी गयादत्त के द्वारा हत्या कर दी जाती है। वह ' राघन ' से भी इस सच्चाई को न कहने के लिए उपाय भी निकाल लेता है। वह कहता है कि यदि आप सत्य कहेंगे तो आप भी इसमें फँस सकते हैं।

राघन : तुमने आत्मन की हत्या की है ------ मैं चश्मदीद गवाह हूँ।

१- मिस्टर अभिमन्यु, पृ०- ६७

गयादत्त : फिर तो आप भी फंसेंगे ।

अन्ततः राघव गुण्डाराज को स्वीकार कर लेता है ।[1]

राघव : आज समाज में केवल दो ही आवश्यकता है राजनीति और नौकरी---। कभी हर राजनीति नौकरी हो जाती है, और हर नौकरी राजनीति ।[2]

यह सम्पूर्ण कार्य मुख्य रूप से पूंजीपतियों के कारण हो रहा है । नाटक " मिस्टर अभिमन्यु " में " आरम्भ " की हत्या पूंजीपति केसरीलाल के कारण होती है । साथ ही एक उच्च अधिकारी राघव का परिवर्तन भी होता है । राघव विवश होकर भैया गयादत्त के दुराग्रह को स्वीकार कर लेता है और मिल का ताला खोलने की अनुमति दे देता है ।

राघव : यस --- राघव स्पीकिंग--- यस हां केसरीलाल के गोदाम की सील तोड़ दी जाय --- फायर आर्डर वापस लिये जाय ।[3]

इसी प्रकारका दृश्य आधुनिक नाटककार काशीनाथ सिंह के " घोआस " ललित मोहन थपल्याल के " काला राजा " नामक नाटक में देखा जा सकता है ।

१- मिस्टर अभिमन्यु, पृ०- ६६
२- -वही- पृ०- ७४
३- -वही- पृ०- ६०

वर्तमान समय में मानव मूल्यों का विघटन बड़ी तेजी के साथ हुआ है। व्यापार में काला बाजारी, नौकरशाही में घूसखोरी तथा वैयक्तिक स्तर पर धोखाधड़ी आदि ने मानव संकट को और गहरा कर दिया है। इन स्थितियों का प्रखर चित्रण लक्ष्मीनारायण लाल के " अब्दुल्ला दीवाना " में हुआ है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के " बकरी " भीष्म साहनी के " हानूश " आदि नाटकों में भी इसे देखा जा सकता है। जीवन मूल्यों के खोखलेपन और आन्तरिक विसंगतियों को " अब्दुल्ला दीवाना नाटक बड़ी तीव्रता से उभारता है। उसमें अब्दुल्ला रूपी अपने जीवन मूल्यों के आदर्शों को मार डाला है। अब प्यार और विश्वास का स्थान अवसरवादिता, पाखण्ड और स्वार्थ ने ले लिया है।

जीवन में व्याप्त कामेच्छा और यौन भावना का चित्रण भी इधर के कई नाटकों में खुलकर किया गया है जैसे डा० लक्ष्मीनारायण लाल के " करफ्यू " में। रमेश बक्षी के " देवयानी का कहना है " मुद्राराक्षस के तिलचट्टा, सुशीलकुमार सिंह " चार यारों की यार " आदि नाटक भी इसके उदाहरण हैं। आज सामाजिक बन्धन व्यक्ति के " करफ्यू " की तरह ही हैं। व्यक्ति उन्हें तोड़कर स्वाभाविक जीवन जीना चाहता है। " देवयानी का कहना है " और करफ्यू ऐसी ही भावनाओं को

तोड़ने वाले नाटक हैं। वैयक्तिक स्तर की कुण्ठा, पुरानी पीढ़ी का नयी पीढ़ी पर दबाव तथा पारिवारिक स्थिति का चित्रण रमेश बक्षी के " तीसरा हाथी " डा० लाल के " व्यक्तिगत " आदि नाटकों में तथा युवा आक्रोश की अभिव्यक्ति बृजमोहन शाह के त्रिशंकु आदि में काफी प्रभावपूर्ण ढंग से की गयी है। हमारे देश में बेरोजगार शिक्षित युवक की और नाटककार की स्थिति " त्रिशंकु " जैसी है। युवक शिक्षित होकर भी नौकरी नहीं पाता और नाटककार इसी प्रकार के दर्शकों की रुचि का नाटक न हीं लिख सकता। इस प्रकार डा० लाल अपने युग के अन्य नाटककारों के साथ चले हैं, पर उनमें कुछ अतिरिक्त सम्पन्नता है जो उन्हें विशिष्ट बनाती है।

आधुनिक काल के नाटकों ने वर्तमान समय में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी अनेक स्तरों पर रेखांकित किया है। इस काल के अधिकांश नाटक अपने परिवेश के हैं। इस सम्बन्ध में दया प्रकाश सिन्हा का " कथा एक कंस की " और डा० लाल का नाटक " मिस्टर अभिमन्यु " आदि नाटक उल्लेख्य हैं। आधुनिक काल में हमारे यहाँ के बहुत से व्यक्ति भ्रष्ट व्यवस्था के चक्रव्यूह में अभिमन्यु की तरह ही फंस गये हैं। अभिमन्यु को " मिस्टर" कहकर इस आधुनिक विडम्बना का सटीक चित्रण डा० लाल ने किया है।

निष्कर्षतः आधुनिक काल के नाटककारों का मुख्य विषय है, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, सामाजिक मूल्यों का ह्रास, कुण्ठित यौन सम्बन्ध मानवीय मूल्यों में गिरावट, अर्थलिप्सा कानून एवम् राजनीति का भ्रष्ट स्वरूप आदि। इन्हीं विषयों को ग्रहण करता हुआ आज का नाटककार अपनी लेखनी को गति प्रदान कर रहा है। इनमें भी विशिष्ट हैं डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक, जिनमें समाज और व्यक्ति के व्यापक फलक का आधुनिक कलात्मक रूप उभर कर सामने आया है। ये न केवल बहुआयामी हैं, परन्तु एक उदार " दृष्टि " की अर्चना भी करते हैं। यह दृष्टि आधुनिक जीवन को नये सिरे से निरखती है।

परिशिष्ट प्रथम

डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
१-	अब्दुल्ला दीवाना	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, दिल्ली	१९७३
२-	अंधा कुआं	,,	भारती भण्डार लीडर प्रेस, प्रयाग	१९५५
३-	उत्तर युद्ध	,,	राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, दिल्ली	१९७७
४-	एक सत्य हरिश्चन्द्र	,,	,,	१९७६
५-	कलंकी	,,	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २।३५, अन्सारी रोड दरियागंज, दिल्ली-६	१९६९
६-	करफ़्यू	,,	राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, दिल्ली	१९७२

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
७-	गंगा माटी	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, दिल्ली	१९७७
८-	राजमहल के आंसू	,,	अमर प्रकाशन मन्दिर प्रयाग	१९५०
९-	तीन आंखों वाली मछली	,,	राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दिल्ली	१९६०
१०-	दूसरा दरवाजा	,,	लिपि प्रकाशन एफ ३।२८, कृष्णनगर दिल्ली - ५	१९७२
११-	दर्पन	,,	राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, दिल्ली	१९६४
१२-	नाटक- तोता- मैना	,,	लोकभारती प्रकाशन १५-ए, महात्मागांधी-मार्ग, इलाहाबाद	१९६२

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
१३-	नाटक बहुरंगी	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	भारतीय ज्ञानपीठ दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी	१९६१
१४-	नाटक बहुरूपी	,,	भारतीय ज्ञानपीठ प्रधान कार्यालय-९ अलीपुर, पार्क प्लेस, कलकत्ता- २७	१९६४
१५-	पर्वत के पीछे	,,	सेन्ट्रल बुक डिपो इलाहाबाद	१९५२
१६-	मादा कैक्टस	,,	राजकमल प्रकाशन- प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली	१९५९
१७-	मिस्टर अभिमन्यु	,,	नेशनल पब्लिशिंग हाउस २३, दरियागंज, दिल्ली-६	१९७१
१८-	यक्ष प्रश्न	,,	राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट, दिल्ली	१९७६

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
१९-	रक्त कमल	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली	१९६२
२०-	राम की लड़ाई	,,	राधाकृष्ण प्रकाशन २,अन्सारी रोड दरियागंज नई दिल्ली-११०००२	१९७९
२१-	राक्षस	,,	नेशनल पब्लिशिंग हाउस स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक एण्ड सन्स प्रा० लि०, २३ दरियागंज नयी दिल्ली-११०००२	१९७६
२२-	लंकाकाण्ड	,,	स्टार बुक सेन्टर नई दिल्ली - २	१९८३

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
२३-	व्यभिचार	डा० लक्ष्मीनारायणलाल	राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली	१९७५
२४-	सबरंग मोहभंग	,,	सरस्वती विहार २१,दयानन्द मार्ग नई दिल्ली-११०००२	१९७७
२५-	सूखा सरोवर	,,	मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी	१९६०
२६-	सुन्दररस	,,	,,	१९५९
२७-	सूर्यमुख	,,	नेशनल पब्लिशिंग हाउस,स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक एण्ड सन्स प्रा० लि०,२३-दरियागंज नयी दिल्ली- ११०००२	१९७७

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
२८-	बाल प्रतिनिधि एकांकी (मन्नी ठकुराइन)	डा० लक्ष्मी नारायण लाल	वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट- लिमिटेड,3 राउण्ड बिल्डिंग, बम्बई-२	१९५४
२९-	सगुन पंछी	,,	लोक भारती प्रकाशन १५-ए, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद-१	१९७२

परिशिष्ट द्वितीय

सहायक ग्रंथों की सूची

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
१-	आधुनिक हिन्दी नाटक एक यात्रा दशक	नरनारायण राय	भारती भाषा प्रकाशन, ५/८/६बी, विद्यासागर, शाहदरा दिल्ली - ११००३२	१९७९
२-	आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ	डा० नरेन्द्र मोहन	आदर्श साहित्य प्रकाशन वेस्ट बीडनपुर दिल्ली - ३१	१९८०
३-	आधुनिकता और : आलोचना	डा० अम्बादत्त पाण्डेय	प्रेम प्रकाशन मन्दिर २०१२, बल्लीमारान दिल्ली - ११०००६	१९८५
४-	आधुनिक हिन्दी साहित्य :	कुमार विमल	पराग प्रकाशन, पटना पटना - ४	१९६५

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
५-	आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण :	रमेशकुन्तल मेघ	अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड २।३६, अन्सारी रोड दरियागंज, दिल्ली-६	×-
६-	चिन्तन और साहित्य :	धीरेन्द्र वर्मा	दिल्ली	१९५८
७-	चिन्तामणि पहला भाग :	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग	१९३९
८-	नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल :	डा० सत्यप्रकाश मिश्र	पंचशील प्रकाशन फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता जयपुर-३०२००३	१९८०
९-	नाट्य चिन्तन : नये सन्दर्भ :	डा० चन्द्र	साहित्य रत्नालय ३७।५०, गिलिस बाजार कानपुर	१९८७

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
१०-	बीसवीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन :	डा० लाजपतराय गुप्त	कल्पना प्रकाशन ७ कबाड़ी बाजार मेरठ कैण्ट-२५०००१	--
११-	मनोविश्लेषण	फ्रायड	राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली	१९५८
१२-	लक्ष्मीनारायण लाल	शीला झुनझुनवाला	लोकभारती प्रकाशन १५-ए, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद	१९८७
१३ -	समाजशास्त्र	बी०के० अग्रवाल	साहित्य भवन आगरा	१९८२
१४-	समाजशास्त्र	एम०एल० गुप्ता एवं डी० डी० शर्मा	साहित्य भवन आगरा	१९८३
१५-	साहित्य सहचर	हजारी प्रसाद द्विवेदी	वाराणसी	१९६८

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
१६-	साहित्य का समाजशास्त्र और रूपवाद	डा० बच्चन सिंह	विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी	१९८४
१७-	साहित्य का समाजशास्त्र	डा० नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस २३ दरियागंज दिल्ली-११०००२	१९८२
१८-	सोसाइटी	आर०एम० मैकाइवर	न्यूयार्क	१९३७
१९-	सोशियोलॉजी	टी०बी० बाटमोर	ए गाइड टू प्राब्लेम्स एण्ड लिट्रेचर, लन्दन	१९६२
२०-	सोशियोलॉजी	विलियम एफ० आगबर्न मेयर एफ० निमकाफ	न्यूयार्क	१९५८
२१-	समाजशास्त्र	एस०पी० गुप्त एवं जी० के० अग्रवाल	आगरा बुक स्टोर आगरा	१९८२

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
२२-	सामाजिक विघटन्‍ता स्वयं परिवर्तन	एम०पी०उनियाल	प्रयाग पुस्तक भवन यूनिवर्सिटी रोड इलाहाबाद	१९७६
२३-	समाजशास्त्र के सिद्धान्त	विद्याभूषण डी० आर० सचदेव	किताब महल १५ थार्नहिल रोड इलाहाबाद	१९८७
२४-	समाज को समझने की ओर :भाग-१	श्यामाचरण दुबे	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली।	१९८७
२५-	सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा	रवीन्द्रनाथ मुकर्जी	विवेक प्रकाशन ७ यू०ए०,जवाहरनगर दिल्ली - ११०००७	१९९१
२६-	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक : विचार तत्व : (~~प्रथम खण्ड~~)	रमेशचन्द्र गुप्त	लोकालोक प्रकाशन १५६,श्यामपार्क साहिबाबाद,गाज़ियाबाद	--

क्र०सं०	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक का नाम	प्रकाशन वर्ष
२७-	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक	डा० रामचन्द्र शर्मा	लोक भारती प्रकाशन १५-ए, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद	--
२८-	हिन्दी नाटक और लक्ष्मीनारायण लाल की रंगयात्रा	डा० चन्द्रशेखर	प्रवीण प्रकाशन १०७२-डी०, महरौली नई दिल्ली-११००३०	१९७९
२९-	हिन्दी साहित्य : परिवर्तन के सौ वर्ष	डा० ओंकारनाथ श्रीवास्तव-	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	--